मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 131 ● वर्ष 14, अंक 7 ● सितम्बर 2024 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

आरक्षण में उप वर्गीकरण – मेहनतकशों को आपस में बाँटने का एक नया हथकण्डा 4

भगतसिंह को पूजो नहीं, उनके विचारों को जानो, उनकी राह पर चलने का संकल्प लो! 7

मज़दूर जीवन पर शेखर जोशी की प्रसिद्ध कहानी 'बदबू' 14

मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल के सौ दिन : गठबन्धन की तनी रस्सी पर फ़ासीवाद के नटनृत्य और जनता की जारी तबाही और बदहाली के सौ दिन

4 सितम्बर को मोदी सरकार के सौ दिन पूरे हो गये। नरेन्द्र मोदी और अमित शाह-नीत सरकार के तीसरे कार्यकाल के सौ दिनों में लगभग वही हुआ है, जिसकी अपेक्षा और आशंका हमने जून 2024 के 'मज़दूर बिगुल' के सम्पादकीय में व्यक्त की थी: आर्थिक नवउदारवाद की नीतियों को फ़ासीवादी रवैये के साथ लागू करने में कोई कमी नहीं आयेगी; मज़दूरों और मेहनतकशों के हक़ों पर हमले में कोई कमी नहीं आयेगी; नीतीश-नायडू की बैसाखी को क़ायम रखने के लिए बिहार और आन्ध्रप्रदेश को विशेष पैकेज दिया जायेगा, सड़कों पर आम मुसलमान आबादी पर फ़ासीवादी गिरोहों के हमले जारी रहेंगे लेकिन मुसलमान आबादी के फ़ासीवादी दमन-उत्पीड़न को सीएए-एनआरसी, समान (पढ़ें साम्प्रदायिक फ़ासीवादी) नागरिक संहिता, आदि जैसे क़दमों के ज़रिये कानूनी जामा पहनाने का काम बाधित होगा; गठबन्धन राजनीति की मजबूरियों के कारण नागरिक-जनवादी अधिकारों को कानूनी तौर पर रद्द करने की फ़ासीवादी प्रक्रिया की दर में कुछ कमी आयेगी, हालाँकि यह प्रक्रिया रुकेगी नहीं, जैसा कि नयी अपराध व दण्ड संहिताओं को लागू करने से सिद्ध हुआ है; बुलडोज़र राज, मॉब लिंचिंग, आदि जैसी घटनाओं की रफ़्तार में कोई कमी नहीं आयेगी; मोदी की 'सुप्रीम लीडर' की छवि को नतीजों से तात्कालिक तौर पर नुक़सान पहुँचेगा और साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संघी एजेण्डा के कोर प्रतीकात्मक मसलों पर समझौते से भी इसकी चमक धूमिल होगी; लेकिन फ़ासीवादी शक्तियाँ देश में ज़मीनी स्तर पर नये सिरे से साम्प्रदायिक उन्माद को फैलाकर टुटपुँजिया वर्गों की प्रतिक्रिया को फ़ासीवादी स्वरूप देने में तत्काल ही संलग्न हो जायेंगी।

सम्पादकीय अग्रलेख

हमने जो आशंकाएँ 18वीं लोकसभा के चुनावों के नतीजों के आने के ठीक बाद व्यक्त की थीं, वे लगभग शब्दश: सही साबित हुई हैं। अगर हम आर्थिक और राजनीतिक पैमानों पर पिछले 100 दिनों का लेखा-जोखा पेश करें, तो यह बात साफ़ हो जाती है।

आर्थिक तौर पर, पिछले 100 दिनों में जो बुनियादी चीज़ देखने में आती है, वह है विशाल पैमाने पर बेरोज़गारी का न सिर्फ़ जारी रहना, बल्कि उसका बढ़ना। मोदी सरकार ने अपने बजट में बेरोज़गारी के सवाल पर "कुछ करने" की नौटंकी करने के वास्ते रोज़गार हेतु "प्रोत्साहन" की नीतियाँ लागू करने का शोशा उछाला था। इसमें इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया था कि सरकार राजकीय क्षेत्र में ख़ाली पड़े लाखों पदों को कब भर रही है, वह नयी सरकारी नौकरियों के सृजन के लिए क्या करने वाली है, वह रोज़गारी गारण्टी के लिए कोई प्रभावी कानून लाने वाली है या नहीं। इसमें पूँजीपतियों को अपनी कम्पनियों में बेरोज़गारों को अस्थायी तौर पर काम पर रखने के लिए प्रोत्साहित करने की बात थी और उसकी कीमत भी इन पूँजीपतियों को नहीं चुकानी थी, बल्कि सरकार को ही चुकानी थी। यानी, घुमा-फिराकर इसकी कीमत भी देश की जनता से ही वसूली जानी थी। बहरहाल, उस दिशा में भी अभी कुछ भी नहीं हुआ है। नतीजतन, पिछले आठ माह में बेरोज़गारी की दर अपने चरम पर है।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रपट के अनुसार, साल 2024 में भारत में रोज़गार सृजन की दर रही है 0.01, यानी लगभग शून्य। यदि प्रति वर्ष काम करने योग्य आबादी में जुड़ने वाले 70 से 80 लाख नये लोगों को देखा जाय, तो कुल मिलाकर रोज़गार सृजन की दर नकारात्मक में आयेगी। यानी बेरोज़गारों की रिज़र्व आर्मी, या श्रम की आरक्षित सेना में बढ़ोत्तरी हो रही है, हालाँकि रोज़गार प्राप्त आबादी में, यानी श्रम की सक्रिय सेना में भी मामूली-सी बढ़ोत्तरी हुई है। लेकिन सवाल यह है कि जो नौकरियाँ मिल रही हैं, उन्हें क्या सही मायने में पक्का रोज़गार कहा जा सकता है? नहीं। जो भी थोड़े-बहुत रोज़गार पैदा हुए हैं, वे अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र में पैदा हुए हैं, जिसमें मेहनतकश लोगों को न तो न्यूनतम मज़दूरी मिलती है, न आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार मिलता है और न ही इस बात की गारण्टी होती है कि उनकी नौकरी कल उनके हाथों में होगी या उन्हें धक्का देकर बेरोज़गारों की क़तारों में खड़ा कर दिया जायेगा। जहाँ तक औपचारिक व संगठित क्षेत्र में नौकरियों के हिस्से

(पेज 9 पर जारी)

बढ़ते स्त्री विरोधी अपराध और प्रतिरोध का रास्ता

● नौरीन

पश्चिम बंगाल के आरजी कर मेडिकल कॉलेज मे हुई बलात्कार की घटना ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। हालाँकि हम अच्छे से जानते हैं कि यह न तो कोई पहली घटना है और, अफ़सोस है कि मौजूदा व्यवस्था व समाज के रहते यह आखिरी भी नहीं साबित होगी। लेकिन मौजूदा फ़ासीवादी निज़ाम की इसमें ख़ास भूमिका है।

फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही स्त्री-विरोधी अपराधों के मामलों में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है। एक के बाद एक होते स्त्री-विरोधी अपराधों को देखकर सभी इन्साफ़पसन्द दिलों में गुस्से की आग सुलगती है। यही आग हमें ऐसी घटनाओं के बाद सड़कों पर लोगों के प्रदर्शन के रूप में देखने को मिलती है। बेशक़ यही होना भी चाहिए। अगर हम सच में ज़िन्दा हैं तो ऐसी घटनाएँ हमें प्रभावित करेंगी और हम उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाएँगे। लेकिन समस्या तब आती है जब हम सिर्फ़ भावनाओं में बहकर ऐसी घटनाओं के ख़िलाफ़ प्रदर्शन करने तक ही अपने आप को सीमित रखते हैं।

ऐसी घटनाओं के ख़िलाफ़ किस तौर पर प्रतिक्रिया दी जाये, ऐसी घटनाओं को कैसे रोका जाये, इसके लिए संघर्ष का सही रास्ता क्या हो, इस पर बात होनी चाहिए। ऐसी घटनाओं के पीछे कौन-से कारक काम करते हैं, समाज में स्त्रीद्वेषी तत्वों के पैदा होने की ज़मीन कहाँ मौजूद है, ऐसे ढेर सारे सवालों पर विचार करने की आवश्यकता है। जब तक हम इस प्रकार के अपराधों की जड़ तक नहीं पहुँचेंगे, हम लाख़ 'सेफ स्पेस' बना लें, फास्ट ट्रैक कोर्ट बना लें, तमाम नियम-क़ानून बना ले, स्थिति वही 'ढाक के तीन पात' वाली रहेगी।

स्त्री विरोधी मानसिकता की जड़ें कहाँ हैं? आख़िर इस बढ़ते वहशीपन के कारण क्या हैं?

अगर आपको महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों से गुस्सा आता है और अगर आपका गुस्सा क्षणिक नहीं है तो ऐन मुमकिन है कि आप एक कदम आगे बढ़कर यह ज़रूर सोचेंगे और तलाश करने की कोशिश करेंगे की इस तरीके की मानसिकता की जड़ें कहाँ हैं। आज हम जिस समाज में जी रहे हैं वह सिर्फ़ पितृसत्तात्मक समाज ही नहीं है। यह मुनाफ़े पर टिकी मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था है जिसका मौजूदा पितृसत्ता के साथ गहरा सम्बन्ध है।

हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तामक मानसिकता औरतों को पैर की जूती, उपभोग की वस्तु, पुरुष की दासी और बच्चा पैदा करने की मशीन समझती है। इसके साथ ही मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था ने हर चीज़ की तरह स्त्रियों को भी ख़रीदे-बेचे जा सकने

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

चुपचाप सहना नहीं है, लड़ना है...

मैंने अपने गाँव में दिल्ली शहर के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। कि राजधानी दिल्ली में हर हाथ को काम मिल जाता है। कोई भी वहाँ बेरोज़गार नहीं है। मैंने तो यह भी दिल्ली में मुख्यमंत्री केजरीवाल ने न्यूनतम वेतन भी 15-16,000 रुपये करवा दिया है। महँगाई ज़रूर है लेकिन कमाई भी तो ज़्यादा है। इसलिए मैं भी अपना गाँव छोड़कर दिल्ली आ गया, रोज़गार करने और कमाने के लिए। आकर दिल्ली शहर की चमक-दमक देखी, बड़ा अच्छा लगा। फिर रहने के लिए दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्र पीरागढ़ा के पास एक बस्ती में छोटा-सा कमरा लिया जिसका मासिक किराया 6000 रुपया सुनकर मेरे पोश उड़ गये। खैर, हम दो लोगों ने मिलकर ले लिया।

काम ढूँढने निकला तो लगभग सभी फैक्टरी में पूछा तो पता लगा कि किसी फैक्टरी में 9000 रु. तो किसी में 9500 रुपये, किसी में 10,000 रु. जिसमें बहुत भारी काम है। लोडिंग-अनलोडिंग जैसा काम है तो 11-12000 रुपये महीने की तनख्वाह 8 घण्टे के हिसाब से है। खैर मैंने भी एक कारखाने में काम पकड़ा। इस कम्पनी में दिनभर माल को ट्राली में रखकर इधर से उधर ले जाने का काम था। 8 घण्टे में ही कमर की हालत खराब हो जाती थी।

आप खुद अन्दाज़ा लगाइये। आधा किलो के 2 से 3 हज़ार पीस ट्राली में रखकर धक्का मारकर पहले खराद मशीन पर ले जाओ, फिर वहाँ से ड्रिल मशीन पर ले जाओ, वहाँ से थ्रेडिंग मशीन पर, वहाँ से हाइड्रोलिक मशीन पर, वहाँ से पैकिंग पर – दिनभर यही काम। इधर से उधर, पूरे दिन में एक चाय तक नहीं। गाँव में तो बैल को भी दो-तीन घण्टे में आराम दे देते हैं। हमको आठ घण्टे से पहले आने की इजाज़त नहीं। उसके बाद भी ओवर-टाइम लगाने का प्रेशर। मना करो तो काम से हटाने की धमकी।

तो अब मैंने जाना कि इस विकसित दिल्ली में मज़दूरों का क्या हाल है। यहाँ मज़दूर महीने भर कमरतोड़ परिश्रम करने पर भी सिर्फ मकान का किराया और दो वक़्त की रोटी का ही जुगाड़ कर पाते हैं, और जिनको मजबूरी में अपनी पत्नी व बच्चों को साथ रखना पड़ता है, वो तो आपको 24 घण्टे फैक्टरी में ही नज़र आयेंगे। हफ्तों गुज़र जाते हैं, बच्चे अपने बाप के दर्शन तक नहीं कर पाते हैं, क्योंकि पिताजी सुबह जल्दी चले जाते हैं और शाम को देर से सिर्फ खाना खाने आते हैं। तब बच्चा सोया मिलता है।

अगर कहीं बीमार पड़ गये या कोई चोट लग गयी तो महीनों की सारी बचत एक सप्ताह में उड़ जाती है। जो कम्पनी आपका खून चूसकर मुनाफा कमाती है वह घायल होने पर दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकती है। फैक्टरी में रुपया बचा रहता है वो भी मार लेते हैं। कोरोना के समय क्या हुआ था, आप सबने तो देखा ही होगा। मैं भी घर लौट गया था। मगर फिर सोचा कि यहाँ कितने दिन रह पाउँगा? रोज़गार की तलाश में तो फिर उसी नर्ककुण्ड में जाना ही पड़ेगा। लेकिन मैंने भी सोच लिया है – अब चुपचाप सहूँगा नहीं। मैं लड़ूँगा और मज़दूरों की एकता बनाउँगा। वरना गाँव और शहर के बीच दौड़ते-दौड़ते मर जाउँगा।

– आपका साथी एक मज़दूर

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

अपराध को साम्प्रदायिक रंग देने की संघियों की कोशिश को जनता की एकजुटता ने फिर किया नाक़ाम!

चार वर्षीय बच्ची के साथ बलात्कार और देश में बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के ख़िलाफ़ भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा दिल्ली के शाहाबाद डेरी में सघन अभियान

● अदिति

दिल्ली के शाहाबाद डेरी में बीते 21 अगस्त को 3 साल 8 महीने की बच्ची के साथ बलात्कार की घटना सामने आयी। 28 साल के इलाक़े के एक युवक द्वारा बच्ची को चॉकलेट का लालच देकर घर से दूर ले जाकर बच्ची के साथ दुष्कर्म किया गया। घर वापस लौटने पर बच्ची को पेट दर्द, उल्टी और बुख़ार होने पर परिजन बच्ची को अस्पताल लेकर गये। प्राथमिक जाँच में बच्ची के साथ बलात्कार की पुष्टि हुई थी। लेकिन अस्पताल और पुलिस प्रशासन की मिलीभगत के चलते बच्ची को बुख़ार और उल्टी की दवाई देकर भेज दिया गया। इस घटना के बाद पुलिस-प्रशासन का रवैया मामले को रफ़ा-दफ़ा करने का था। जनदबाव के कारण बच्ची की मेडिकल जाँच हुई, केस दर्ज हुआ और बलात्कारी युवक की गिरफ़्तारी की गयी।

इस अति संवेदनशील मसले पर भी भाजपा और आरएसएस साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न करना चाहते थे। इलाक़े का सांसद योगेन्द्र चन्दौलिया अपनी राजनीतिक रोटी सेंकने के लिए पीड़ित परिवार से मिलने पहुँचा और 25,000 हज़ार मुआवज़ा देने का एलान किया। साथ ही इस पूरे मसले पर मुसलमानों के प्रति ख़ूब ज़हर भी उगला क्योंकि बलात्कारी युवक मुस्लिम समुदाय से ताल्लुक रखता था। सांसद ने कहा कि "रोहिंग्या मुसलमान हमारे इलाक़ों में आते हैं, हमारी "बहन-बेटियों" को छेड़ते हैं, इन्हें सबक सिखाना होगा"। उसने कहा कि देश में भी जितनी भी चोरी से लेकर बलात्कार तक की घटनाएँ होती हैं, सबके पीछे मुसलमान ही होते हैं। भाजपा के स्थानीय नेताओं ने भी इलाक़े में लोगों के बीच फूट डालने की कोशिश की।

'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) द्वारा इस घटना पर इलाक़े में 10 दिन का सघन अभियान चलाया गया। पार्टी द्वारा रैली, नुक्कड़ सभा, व्यापक पर्चा वितरण, गली मीटिंग और जनसभाओं का आयोजन किया गया। इलाक़े के लोगों को बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के ख़िलाफ़ एकजुट किया गया, जिससे संघियों द्वारा साम्प्रदायिक माहौल बनाने के मंसूबे नेस्तनाबूद हो गये। साथ ही, इलाक़े के लोगों द्वारा शपथ ली गयी कि भाजपा, आरएसएस, विश्व हिन्दू परिषद के गुण्डों को गलियों में घुसने नहीं देंगे, अपनी एकता क़ायम करेंगे और संघ की दंगे की राजनीति को परास्त करेंगे।

प्रचार के दौरान जनता को सम्बोधित करते हुए वक्ताओं ने बताया कि भाजपा के केन्द्र में आने के बाद से बलात्कार और हत्या की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है। उन्नाव से लेकर कठुआ तक की घटनाओं में हमने देखा कि बलात्कारियों को सरकार का संरक्षण प्राप्त होता है। यह वही सरकार है जो 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के नाम पर बेटियों के साथ अपराध करने वालो को बचाती और संरक्षण देती है, जिससे कि स्त्री-विरोधी तत्वों को पर्याप्त शह मिलती है। बृजभूषण शरण सिंह, चिन्मयानन्द, कुलदीप सिंह सेंगर, राम रहीम और आसाराम जैसे बलात्कारियों का उदाहरण हमारे सामने है, जिनको प्रश्रय देने का काम भाजपा सरकार और संघी फ़ासीवादी ही करते हैं। लेकिन यही लोग शाहाबाद डेरी

इलाक़े में इस घटना को धार्मिक रंग देने कि कोशिश कर रहे थे। इन संघी दंगाइयों का मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी की असल समस्याओं पर कभी कोई बयान तक नहीं आता, लेकिन इस मसले पर हिन्दू-मुसलमान के नाम पर उन्माद भड़काकर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने का काम करने में संघी फ़ासीवादी तुरन्त जुट गये। असल में इनकी राजनीति ही यही है कि जनता को उनके असल मुद्दों से भटकाकर उन्हें नक़ली मुद्दों में उलझा दिया जाये।

शाहाबाद- डेरी में यह घटना अनायास ही नहीं हो गयी। पूरे इलाक़े में नशाखोरी बड़े पैमाने पर फैली हुई है। अक्सर नुक्कड़ चौराहों तक पर लम्पट तत्व छेड़खानी की घटनाओं को अंजाम देते हैं। बहुत से लम्पट तो भाजपा-आम आदमी पार्टी तथा अन्य चुनावबाज़ पार्टियों से ही जुड़े होते हैं। इन पार्टियों के तमाम नेता इन गुण्डों को शह देते हैं, ताकि चुनाव के समय इनका इस्तेमाल कर सकें। इलाक़े में इस तरह की यह कोई पहली घटना नहीं है। इससे पहले भी कई बार बच्चियों व स्त्रियों से बलात्कार के मामले सामने आ चुके हैं। एक वर्ष पहले साक्षी हत्याकाण्ड एवं कुछ साल पहले पाँच वर्ष की बच्ची मुस्कान के साथ भी बलात्कार और हत्या की घटना सामने आयी थी।

पिछले कुछ सालों में देखें तो पता चलता है कि बलात्कार, छेड़छाड़ की घटनाओं की बाढ़ सी आ गयी है। कोलकाता के आरजी कर मेडिकल कॉलेज में महिला डॉक्टर से बलात्कार की घटना को लेकर देशभर के लोग विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं। लेकिन उसके बाद भी लगातार ऐसी घटनाएँ लगातार सामने आ रही है। अभी कुछ दिन पहले करावलनगर (दिल्ली) में 9 साल की बच्ची के साथ बलात्कार, मुज़फ़्फ़रपुर में और उत्तराखण्ड में महिला डॉक्टर के साथ बलात्कार की घटना सामने आयी है और अभी हाल ही में राम मन्दिर में एक युवती के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना भी सामने आयी है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) का डाटा बताता है कि भारत में महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों में भयानक वृद्धि हुई है। अकेले 2022 में 4,45,256 मामले दर्ज किये गये, जो हर घण्टे लगभग 51 एफ़.आई.आर के बराबर है। एक रिपोर्ट बताती है कि हमारे देश में हर दिन 86 महिलाओं के साथ बलात्कार के मामले दर्ज होते हैं। तमाम केन्द्र शासित प्रदेशों में सबसे अधिक महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध दिल्ली में दर्ज हुए हैं। दिल्ली पुलिस द्वारा जारी सूचना के आधार पर 'द हिन्दू' में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक देश की राजधानी दिल्ली में 2024 के पहले छः महीने में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराध में 63.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। ये वे आँकड़े हैं जिनकी शिक़ायत दर्ज हो पाती है, जबकि सच्चाई इससे कहीं अधिक भयावह है क्योंकि अधिकांश मामलों में तो शिक़ायत भी नहीं दर्ज हो पाती है।

"लोकतन्त्र के मन्दिर" यानी संसद तक में बलात्कारियों और महिला-विरोधी अपराध में संलग्न नेताओं की भरमार है। अभी हाल ही में जारी एडीआर की रिपोर्ट बताती है कि 2024 के लोकसभा चुनाव में जीते 543 सांसदों में से 46 प्रतिशत (251) के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं। इसके अलावा सांसदों में 31 प्रतिशत (170) ऐसे हैं जिनके ख़िलाफ़ बलात्कार, हत्या, अपहरण जैसे गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं। भाजपा के 240 सांसदों में से 94, कांग्रेस के 99 सांसदों में से 49, सपा के 37 में से 21, तृणमूल कांग्रेस के 29 में से 13, डीएमके के 22 में से 13, टीडीपी के 16 में से 8 और शिवसेना (शिंदे) के 7 में से 5 सांसदों के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं। आरजेडी के 100 प्रतिशत (चारों) सांसदों के ख़िलाफ़ गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं।

बर्बर स्त्री-विरोधी मानसिकता को खाद-पानी देने वाली इस व्यवस्था और इसकी रक्षक सरकारों के असल चेहरे को पहचानिए

मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था व पितृसत्ता के गठजोड़ से बनी सड़ाँध भरी संस्कृति एवं फ़ासिस्ट सत्ता से मिलने वाली शह लगातार बढ़ते स्त्री विरोधी अपराध का अहम कारक हैं। हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तात्मक मानसिकता औरतों को पैर की जूती, उपभोग की वस्तु, पुरुष की दासी और बच्चा पैदा करने की मशीन समझती है। इसके साथ ही मुनाफ़ाखोर व्यवस्था ने हर चीज़ की तरह स्त्रियों को भी ख़रीदे-बेचे जा सकने वाले माल में तब्दील कर दिया है। विज्ञापनों व फ़िल्मी दुनिया ने औरतों को बिकाऊ वस्तु बनाने के काम बहुत ही नंगे और अश्लील तरीक़े से किया है। वहीं बेरोज़गारी, नशा, मूल्यहीन शिक्षा, आसानी से उपलब्ध अश्लील सामग्री आदि न केवल युवाओं को बल्कि पूरे समाज को बर्बाद कर रहीं हैं, बल्कि स्त्री-विरोधी मानसिकता को खाद्य-पानी देने का काम भी कर रही हैं। इसी के साथ हमें ये भी समझना होगा कि फ़ासीवाद अपने जन्मकाल से अब तक, सार्वजनिक रूप से चरम पुरुषवर्चस्वादी रहा है। उसके जनवाद-विरोधी विचार पुरुषस्वामित्ववाद की जड़ में होते हैं। यूँ तो पूँजीवाद स्त्रियों की श्रमशक्ति सस्ती से सस्ती दरों पर निचोड़ने के लिए उसे पुरुषों के मुक़ाबले हमेशा दोयम दर्जे का नागरिक बनाये रखना चाहता है। पर संकटग्रस्त पूँजीवाद उन्हें और अधिक निकृष्ट उजरती ग़ुलाम बनाये रखने के लिए उनकी घरेलू ग़ुलामी की ज़ंजीरों को भी और मज़बूत बना देना चाहता है। एक ओर वह पुरुष मज़दूरों की मोलभाव की क्षमता घटाने के लिए स्त्रियों को उत्पादक कार्रवाइयों में लाना चाहता है, दूसरी ओर दोयम दर्जे की नागरिक के रूप में उनकी श्रमशक्ति को सस्ती से सस्ती दरों पर निचोड़ना चाहता है। पूँजीवाद का यही बुनियादी आर्थिक तर्क ही पितृसत्तात्मक मानसिकता के अलावा फ़ासीवादियों की उग्र स्त्री-विरोधी धारणाओं-मान्यताओं का भौतिक आधार होता है। पूँजीवाद में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और भी बदतर होती जाती है।

साथ ही, हमें इस ग़लतफ़हमी में नहीं रहना चाहिए कि स्त्री-विरोधी अपराधों को महज़ पुलिस व क़ानून व्यवस्था को चाक-चौबन्द करके रोका जा सकता है। बलात्कार व दुर्व्यवहार जैसी घटनाएँ अक्सर पुलिस थानों तक में होती हैं। हाल में बलात्कार के दोषी रामरहीम को लगातर 6 बार बेल देने वाला जेलर हरियाणा विधानसभा चुनाव में भाजपा का रेवाड़ी से प्रत्याशी बना है। अदालतों में जज प्रायः अपने स्त्री-विरोधी पूर्वाग्रहों का ज़हर उगलते रहते हैं। अफ़सरों की रुग्ण यौन विलासिताओं और सेक्स पर्यटन की ख़बरों से कौन अपरिचित होगा? नेताओं द्वारा बलात्कारों और यौन अपराधों की घटनाओं का एक बहुत छोटा हिस्सा ही सामने आ पाता है। हालत यह है कि आज एक लाख से अधिक बलात्कार के मामले लम्बित हैं।

इसका मुक़ाबला करने के लिए आज ज़रूरत है कि प्रगतिशील, सेक्युलर आम मध्यवर्गीय युवाओं और मज़दूरों को (इनमें स्त्री समुदाय भी शामिल है) ऐसे दस्तों में संगठित करना होगा, जो अपने स्तर पर लम्पट-असामाजिक-आपराधिक तत्वों और फ़ासीवादी गुण्डों से निपटने को तैयार हों। इसका आधार एक वर्ग-आधारित पितृसत्ता विरोधी आन्दोलन ही बन सकता है, जो स्त्री-विरोधी अपराधों और मानसिकता की जड़ों को मौजूदा पूँजीवादी वर्गीय समाज में देखता है और पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी व्यवस्था को कठघरे में खड़ा करता है। एक ऐसा आन्दोलन ही क़ानूनी हक़ों को अधिकतम सम्भव हदों तक जीत सकता है, सड़कों पर स्त्री-विरोधी पितृसत्तात्मक तत्वों को सबक सिखा सकता है, जनसमुदायों में पितृसत्तात्मक विचारों के विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष कर सकता है और एक समानतामूलक व न्यायसंगत समाजवादी व्यवस्था के संघर्ष में महती भूमिका निभा सकता है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण में उप वर्गीकरण – मेहनतकशों को आपस में बाँटने का एक नया हथकण्डा !!

● अजित

सुप्रीम कोर्ट द्वारा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण में उपवर्गीकरण के सम्बन्ध में लिए गए फ़ैसले के बाद देश में आरक्षण को लेकर बहस एक बार फ़िर शुरू हो गयी है। देश के अलग-अलग राजनीतिक दलों ने इसपर अपनी-अपनी प्रतिक्रिया दी हैं। एक तरफ़ विपक्ष के लगभग सभी दलों ने इसे संविधान-विरोधी और आरक्षण-विरोधी बताया तो वहीं दूसरी तरफ़ सत्तारूढ़ राजग के संघटक दल ने भी इसका विरोध किया है। कई दलित और आदिवासी संगठनों ने भी इसका विरोध किया तथा 21 अगस्त को देशव्यापी हड़ताल का आह्वान दिया। यह ऐसे समय में हो रहा है जब देश में बेरोज़गारी चरम पर है। आईएलओ की रिपोर्ट के मुताबिक जारी वर्ष में भारत में नौकरियाँ पैदा होने की दर 0.01 प्रतिशत, यानी लगभग 0 है। वहीं, पक्की नौकरियों का हिस्सा कुल नौकरियों में घटकर 10.5 प्रतिशत से 9.7 प्रतिशत रह गया। युवाओं में बेरोज़गारी की दर भयंकर और अभूतपूर्व है। इसी समय नये सिरे से जाटों व मराठों द्वारा आरक्षण के आन्दोलन शुरू कर दिये गये हैं और इसी समय गुर्जर-मीणा विवाद को भी हवा दी जा रही है। और इसी समय दलितों के लिए आरक्षण में क्रीमी लेयर की बात हो रही है और उसमें उपवर्गीकरण करने की बातें हो रही है। क्या आपको इन दोनों चीज़ों में रिश्ता समझ में आ रहा है? जब शिक्षा और रोज़गार के अवसर ही नगण्य हो रहे हैं, उस समय मेहनतकश जनता को फिर से आरक्षण के प्रश्न पर लड़ाये जाने की पूरी तैयारी हो रही है। मौजूदा मसले को भी अच्छी तरह समझ लेना हमारे लिए आवश्यक है, कि इस उपवर्गीकरण के मसले पर यह काम देश के शासक वर्ग किस प्रकार कर रहे हैं।

उपवर्गीकरण का यह मामला काफ़ी पुराना है। साल 1975 में ज्ञानी जैल सिंह की पंजाब सरकार ने पंजाब के वाल्मिकी और मज़हबी सिख समुदाय के लोगों के विषय में आदेश जारी कर अनुसूचित जाति के आरक्षण में बँटवारा कर उनके लिए 50 प्रतिशत आरक्षण को लागू कर दिया। कई वर्षों बाद, आन्ध्र प्रदेश की सरकार ने साल 2000 में अनुसूचित जाति के आरक्षण में उपवर्गीकरण कर विधानसभा में एक कानून पारित कर दिया। इस कानून को हाईकोर्ट ने जायज़ क़रार दिया। लेकिन साल 2004 में सुप्रीम कोर्ट ने इस कानून को असंवैधानिक क़रार दिया। सुप्रीम कोर्ट के इसी फ़ैसले के आधार पर पंजाब के कानून को भी निरस्त कर दिया गया। उसके बाद मामला फ़िर से सुप्रीम कोर्ट की एक बड़ी बेंच को सुपुर्द किया गया। 1 अगस्त 2024 को 7 जजों की बेंच ने अन्तिम रूप से यह फ़ैसला सुनाया कि राज्य सरकारें अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण में उपवर्गीकरण कर सकती हैं। इसके साथ ही अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण में 'क्रीमी लेयर' की बात भी की गयी है जिसका अर्थ है कि 8 लाख रुपए की सालाना आय से अधिक कमाने वालों को आरक्षण नहीं मिलेगा।

इस फ़ैसले के बाद विपक्ष के लगभग सभी दलों ने इसकी निन्दा की और इसे असंवैधानिक बताया। लगभग सभी विपक्षी दलों ने भाजपा को आरक्षण-विरोधी बताया है। हालाँकि इनके विरोध करने की असली वजह अपने-अपने वोट बैंक की राजनीति हैं क्योंकि इन दलों ने भी सत्ता में रहते हुए दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों के हालात की बेहतरी के लिए क्या किया है यह सबके सामने है। लोजपा के चिराग पासवान ने इस फ़ैसले का विरोध इसलिए किया हैं क्योंकि उन्हें इस बात का डर है कि इसके बाद राजद व अन्य अस्मितावादी राजनीति करने वाले दलों की पैठ दलितों के बीच हो जायेगी और उनकी राजनीति ख़त्म हो सकती है। 'हम' पार्टी के जीतन राम माँझी ने इस फ़ैसले का स्वागत किया है क्योंकि वह इस फ़ैसले को इस बतौर देख रहें हैं कि यह उन्हें पूरी दलित जाति का नेता बनने का मौक़ा देगी और अपने जातिगत आधार को मज़बूत करने का भी मौक़ा देगी।

तमाम दलित और आदिवासी समुदाय के बुद्धिजीवियों ने भी इस फ़ैसले का विरोध किया हैं। उनके विरोध करने की असली वजह यह है कि पिछले 76 सालों से आरक्षण की व्यवस्था के कारण अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बीच से इनका एक वर्ग पैदा हुआ है जो सुविधा-सम्पन्न और व्यवस्था का लाभप्राप्तकर्ता बन चुका है। उनका कहना है कि आरक्षण का आधार केवल आर्थिक व नौकरी के अवसर का प्रश्न नहीं है, बल्कि आम तौर पर, दलित आबादी की सामाजिक अरक्षितता और पिछड़ापन है। इस प्रकार उपवर्गीकरण आरक्षण के सवाल को केवल आर्थिक अवसरों पर सीमित कर देता है। ज़ाहिर है, अपनी विशिष्ट जातियों की विशेषाधिकार-प्राप्त स्थिति को सुरक्षित करना भी इनमें से कुछ का सरोकार है।

आम तौर पर छात्रों-नौजवानों और जेनुइन तत्वों के बीच आरक्षण की व्यवस्था में की जाने वाली किसी भी तरह की छेड़छाड़ को किसी की हार तो किसी की जीत के तौर पर देखने का एक रुझान है। इस आबादी को यह बात समझने की ज़रूरत है कि आरक्षण की व्यवस्था में किए गए किसी भी बदलाव से जनता के एक बड़े हिस्से की हालत में कोई सुधार नहीं आने वाला है चाहे वह आरक्षण का लाभप्राप्तकर्ता हो अथवा न हो। पिछले 76 सालों में आरक्षण की व्यवस्था ने क्या हासिल किया है, इसपर आलोचनात्मक विवेक के साथ सोचना चाहिए। एक समय तक यह एक जनवादी अधिकार के रूप में प्रासंगिकता रखता था। यह भी सच है कि इसने दलित आबादी के भीतर और ओबीसी आबादी के भी शासक वर्गों का एक छोटा सा सामाजिक आधार तैयार कर दिया है। दलित आबादी का एक बेहद छोटा हिस्सा जो मुश्किल से 10 फ़ीसदी है, खाते-पीते मध्यवर्ग और उच्च वर्ग में शामिल हो गया है और उसका सरोकार अब व्यापक मेहनतकश दलित आबादी से नहीं है जिसकी भारी बहुसंख्या खेतिहर मज़दूर वर्ग शहरी व ग्रामीण मज़दूर वर्ग में शामिल है। लेकिन अब पिछले कुछ दशकों से इस स्थिति में कोई और इजाफ़ा या परिवर्तन नहीं हो रहा है। यही आबादी आज जाति के प्रश्न पर अस्मितावादी और व्यवहारवादी पूँजीवादी राजनीति की हिमायती है और उसका सामाजिक आधार है। यूजीसी की रिपोर्ट बताती है कि उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से आने वाले छात्रों और पढ़ाने वाले प्रोफेसरों की संख्या बहुत ही कम है। उच्च पदों की नौकरियों में भी कई सारे पद जो इन जातियों के लिए आरक्षित हैं वे ख़ाली रह जाते हैं। इसकी वज़ह है कि इन जातियों से आने वाली एक बड़ी आबादी अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाती है।

सच्चाई यह है कि जब नवउदारवादी दौर में सरकारी नौकरियाँ ही नहीं हैं, तो किसी जाति को औपचारिक तौर पर कितना आरक्षण दिया जाता है, दलितों के आरक्षण के बीच में कितना और कैसा उपवर्गीकरण कर दिया जाता है, उससे इस समूचे वर्ग की नियति पर, उनके हालात पर कोई गुणात्मक फ़र्क नहीं पड़ने वाला है। जब नौकरियों की पैदा होने की दर ही शून्य के निकट है और अगर उसे काम करने योग्य आबादी में होने वाली बढ़ोत्तरी के सापेक्ष रखें, तो नकारात्मक में है, तो फिर इन श्रेणीकरणों और वर्गीकरणों को आरक्षण की लागू नीति में घुसा देने से किसे क्या हासिल हो जायेगा? पूँजीवादी व्यवस्था में नगण्य होते अवसरों के लिए दलित मेहनतकश व आम मध्यवर्गीय जनता में ही आपस में सिर-फुटौव्वल होगा, दलित जातियों के बीच ही आपस में विभाजन की रेखाएँ खिंच जायेंगी और इसका पूरा फ़ायदा देश के हुक्मरान उठायेंगे। आज जब बेरोज़गारी अभूतपूर्व रूप से बढ़ रही है, तो उस समय विविध रूपों में आरक्षण की राजनीति की सिगड़ी को गर्म करने का काम शासक वर्ग और उसके पिछलग्गू कर रहे हैं। वास्तव में, आरक्षण के जनवादी अधिकार से जो हासिल होना था वह कई दशकों पहले हासिल हो चुका है। आज यदि कहीं आरक्षण के तहत सीटों को नहीं भरा जाता है, दलितों को इन चन्देक अवसरों से वंचित किया जाता है, तो उसके ख़िलाफ़ हमें ज़रूर संघर्ष करना चाहिए। लेकिन नये-नये आरक्षणों या आरक्षण के भीतर नये-नये श्रेणीकरणों और उपवर्गीकरणों के नाम पर सरकार द्वारा जनता को बाँटने के लिए लायी जाने वाली नीतियों की हमें मुख़ालफ़त करनी चाहिए और जनता के सामने यह स्पष्ट करना चाहिए कि इस पर सिर-फुटौव्वल और जूतम-पैजार करके जनता को तो कुछ भी नहीं हासिल होगा, बस उसके बीच के विभाजन की दीवारें और ऊँची हो जायेंगी और इसका लाभ देश के धन्नासेठों और उनके राजनीतिक नुमाइन्दों को मिलेगा। यही हो भी रहा है। साथ ही, व्यापक मेहनतकश दलित आबादी को इस आरक्षण की राजनीति से कुछ भी नहीं हासिल होने वाला है और साथ ही आरक्षण के रास्ते दलितों की मुक्ति और जाति के अन्त का सपना देखना शेखचिल्ली के सपने देखने के समान है। सभी के लिए समान और निशुल्क शिक्षा और सभी के लिए रोज़गार के बुनियादी अधिकार के लिए संघर्ष ही आज वह एजेण्डा है, जिस पर संघर्ष करके व्यापक दलित आबादी भी शिक्षा व रोज़गार के हक़ की लड़ाई लड़ सकती है। साथ ही, यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि जाति-अन्त और हर हाथ को काम का लक्ष्य मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर पूरा हो ही नहीं सकता। यह केवल एक समाजवादी व्यवस्था और मज़दूर राज के मातहत ही पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

दूसरी ओर, जनरल श्रेणी से आने वाले छात्रों-नौजवानों को यह लगता है कि आरक्षित वर्ग के लोग ही उनकी नौकरियाँ खा रहे हैं। इसमें उनके भीतर मौजूद ब्राह्मणवादी सोच भी ज़िम्मेदार होती है। जब दक्षिणपन्थी व फ़ासीवादी ताक़तें आरक्षण को ख़त्म करने की बात करते हैं, तो वे इस मानसिकता के कारण भी उनका समर्थन करते हैं। जबकि सच यह है कि आज चाहे 100 प्रतिशत आरक्षण कर दिया जाय या 100 प्रतिशत आरक्षण समाप्त कर दिया जाय, न तो इससे जनरल श्रेणी के लोगों को शिक्षा और रोज़गार मिल जायेगा और न ही इससे दलित आबादी को शिक्षा और रोज़गार मिल जायेगा। वजह यह कि सरकारी नौकरियाँ पैदा नहीं हो रहीं और शिक्षा के निजीकरण की स्थिति यह है कि गुणवत्ता वाली शिक्षा के अवसर धनी वर्गों की बपौती बन चुके हैं। लेकिन जातिगत श्रेष्ठतावाद की सोच के कारण कुछ लोग आरक्षण ख़त्म करने की बात करते हैं और मेरिटोक्रेसी, यानी योग्यता के राज्य, की बात करते हैं। लेकिन यही लोग कभी मैनेजमेण्ट कोटा, एनआरआई कोटा आदि का विरोध नहीं करते। क्या सारे धन्नासेठों की औलादें प्रतिभावान होती हैं? इसी से पता चलता है कि आरक्षण विरोध की राजनीति के पीछे योग्यता आदि को लेकर कोई सरोकार नहीं है, बल्कि एक ब्राह्मणवादी श्रेष्ठताबोध की सोच है। लेकिन ऐसी प्रतिक्रियावादी ताक़तों के पीछे आम घरों के जनरल कटेगरी से आने वाले नौजवान भी बेरोज़गारी की भयंकर मार के कारण चल पड़ते हैं। वे समझ ही नहीं पाते कि दलित और ग़ैर-दलित जनता, जनरल और रिज़र्व्ड श्रेणी के लोग एक-दूसरे के दुश्मन नहीं हैं, बल्कि उन दोनों की दुश्मन मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था है, जो मुट्ठीभर मुनाफ़ाखोरों के मुनाफ़े की ख़ातिर शिक्षा और रोज़गार का हक़ व्यापक मेहनतकश जनता से छीन लेती है।

आज लगातार उदारीकरण और निजीकरण के कारण तमाम विभागों में नौकरियाँ ख़त्म हो रहीं हैं और कई विभागों का निजीकरण कर रही-सही नौकरियाँ भी ख़त्म की जा रही हैं। केन्द्र से लेकर राज्य सरकारों की तमाम परीक्षाएँ रद्द हो रही हैं, जो एक व्यवस्थागत भ्रष्टाचार की समस्या है, कुछेक सड़े सेबों का सवाल नहीं है। पेपर लीक और परीक्षाओं में धाँधली के मामले लगातार सामने आ रहे हैं। यूपीएससी से लेकर नीट तक की परीक्षाओं में धाँधली सामने आ रही है। बेरोज़गारी अपने चरम पर है। इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि पूरे देश में कहीं भी ड्राइवर, खलासी, स्वीपर या क्लर्क की कुछ सौ की भर्ती निकलने पर भी लाखों-लाख फॉर्म भरे जाते हैं। एक-एक भर्ती के पीछे हज़ारों-हज़ार की भीड़ होती है। इनमें स्नातक, स्नातकोत्तर और पीएचडी किए हुए नौजवानों तक की संख्या भी बहुत होती है। हमारे टैक्स के पैसे को हमारी शिक्षा और रोज़गार के लिए ख़र्च नहीं किया जाता है। देश में शिक्षा लगातार महँगी होती जा रही है। नयी शिक्षा नीति-2020 का सीधा फ़रमान हैं कि शिक्षा वही ग्रहण कर सकता है जिसके पास पैसा है। कॉलेज और विश्वविद्यालयों को 'शॉपिंग मॉल' बनाया जा रहा है। ऐसे में दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों की कितनी आबादी शिक्षा हासिल कर पायेगी यह सोचने की बात है। ऐसी असुरक्षा की स्थिति में आरक्षण का मुद्दा 'आग में घी डालने' का काम करता है और बेरोज़गारी के असली कारणों को छोड़ कर मेहनतकश वर्ग आपस में ही लड़ने लगता है। सत्ता में बैठे लोग आरक्षण का मुद्दा उछाल लोगों को बाँटने तथा असली सवाल से दूर करने में क़ामयाब हो जाते हैं।

आज देश की मेहनतकश अवाम

(पेज 5 पर जारी)

देश में बेतहाशा बढ़ती बेरोज़गारी

● भारत

भारत में बेरोज़गारी तेजी से बढ़ रही है। भले ही लोगों का विकास नहीं हो रहा हो, पर बेरोज़गारी में लगातार 'विकास' देखने को मिल रहा है। करोड़ों मज़दूर और पढ़े-लिखे नौजवान, जो शरीर और मन से दुरुस्त हैं और काम करने के लिए तैयार हैं, उन्हें काम के अवसर से वंचित कर दिया गया है और मरने, भीख माँगने या अपराधी बन जाने के लिए सड़कों पर धकेल दिया गया है। आर्थिक संकट के ग़हराने के साथ हर दिन बेरोज़गारों की तादाद में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। बहुत बड़ी आबादी ऐसे लोगों की है, जिन्हें बेरोज़गारी के आँकड़ों में गिना ही नहीं जाता लेकिन वास्तव में उनके पास साल में कुछ दिन ही रोज़गार रहता है या फिर कई तरह के छोटे-मोटे काम करके भी वे मुश्किल से जीने लायक कमा पाते हैं। हमारे देश में काम करने वालों की कमी नहीं है, प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी नहीं है, जीवन के हर क्षेत्र में बुनियादी सुविधाओं के विकास और रोज़गार के अवसर पैदा करने की अनन्त सम्भावनाएँ मौजूद हैं, फिर भी आज देश में बेरोज़गारी आसमान छू रही है।

मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल के सौ दिन पूरे हो चुके हैं। मोदी सरकार ने बेरोज़गारी के आँकड़े जारी करने पर तो बहुत पहले रोक लगा दी थी और अब सरकार ने रोज़गार के सवाल पर बात करना भी बन्द कर दिया है। इसके बावजूद तमाम कोशिशों के बाद भी सरकार सच्चाई को नहीं छुपा पा रही है। आई.एल.ओ की रिपोर्ट की माने तो हर साल लगभग 70-80 लाख युवा श्रम बल में शामिल होते हैं, लेकिन 2012 और 2019 के बीच, रोज़गार में वृद्धि लगभग न के बराबर हुई – केवल 0.01 प्रतिशत। वहीं, इस रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि 2022 में शहरी युवाओं (17.2 प्रतिशत) के साथ-साथ

ग्रामीण युवाओं (10.6 प्रतिशत) के बीच भी बेरोज़गारी दर बहुत अधिक है। शहरी क्षेत्रों में महिला बेरोज़गारी दर 21.6 प्रतिशत के साथ काफ़ी अधिक है। आई.एल.ओ की इस रिपोर्ट से पता चलता है कि मोदी सरकार ने कम वेतन वाले अनौपचारिक क्षेत्र के रोज़गार का प्रतिशत बढ़ा दिया है, जिनमें किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा नहीं होती है। 2019-22 तक औपचारिक रोज़गार 10.5 प्रतिशत से घटकर 9.7 प्रतिशत हो गयी। इसके अलावा, भारत की केवल 21 प्रतिशत कार्य शक्ति के पास नियमित वेतन वाली नौकरी है, जो कि कोविड के पहले के समय से 24 प्रतिशत थी।

आज किसी भी औद्योगिक इलाक़े में जाकर देखें तो कारख़ानों के गेट पर 'हेल्पर/कारीगर चाहिए' की तख़्ती लटकती दिख जायेगी। रोज़ सुबह गेट पर मज़दूरों की भीड़ इकट्ठा होती है जिसमें से ठेकेदार या फोरमैन कम से कम मज़दूरी पर काम कराने के लिए कुछ लोगों को चुनकर बाक़ी को वापस भेज देते हैं। शहरों में 'लेबर चौक' पर मज़दूरों की मण्डियाँ लगती हैं, जिसमें खड़े होने वाले मज़दूरों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, और काम न मिलने पर निराश वापस जाने वालों की भी तादाद पहले से बहुत ज़्यादा है। बढ़ती बेरोज़गारी का आलम यह है कि इन मज़दूर मण्डियों में अच्छी-खासी डिग्रियाँ लिये हुए नौजवान भी खड़े मिल जाते हैं। पूँजीपति बेरोज़गार मज़दूरों की मौजूदगी को काम पर लगे हुए मज़दूरों का शोषण-उत्पीड़न बढ़ाने के लिए 'ट्रम्प कार्ड' के रूप में इस्तेमाल करता है। पूँजीपतियों और उनके चमचों के मुँह से ऐसी बातें अक्सर सुनी जा सकती हैं : "सौ मज़दूरों का इन्तज़ाम करने से ज़्यादा मुश्किल है सौ कुत्ते ढूँढ़ना।" या, "इतने पर काम नहीं करना है, तो भाग जाओ, बाहर एक के बदले दस खड़े हैं लाइन में।" पूँजीपति इतना आक्रामक क्यों है? क्योंकि कारख़ाने के गेट के बाहर हज़ारों-हज़ार बेरोज़गार मज़दूर मौजूद हैं। पूँजीपति कारख़ाने के अन्दर के मज़दूरों को धमकाने और उनकी मज़दूरी कम करने के लिए इन बेरोज़गारों का इस्तेमाल करता है।

पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर लोगों का एक हिस्सा हमेशा बेरोज़गार ही रहता है। बेरोज़गारी की यह स्थिति पूँजीपतियों के लिए फ़ायदेमन्द साबित होती है क्यूँकि जितने ज़्यादा मज़दूर रोज़गार के लिए क़तारों में खड़े होंगे, पूँजीपति उजरतों को तय करने की सौदेबाजी में अपना पक्ष उतना ही मज़बूत करने में सफल होते हैं। साथ ही, तेज़ी के दौर में नये निवेश करने के लिए मालिकों की जमात को अपने लिए बेरोज़गारों की एक आरक्षित सेना की ज़रूरत होती है। इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था अपनी नैसर्गिक गति से बेरोज़गारी पैदा करती है और उसे क़ायम रखती है। लगातार मुनाफ़े की दर के सिकुड़ने के चलते पैदा हुए अतिरिक्त उत्पादन के आर्थिक संकट के दौर में बेरोज़गार लोगों की संख्या बड़े स्तर पर बढ़ती है। बड़े-बड़े कारोबार औंधे मुँह गिर पड़ते हैं। कारख़ाने बन्द होते हैं या चल रहे कारख़ानों में भी बड़े स्तर पर मज़दूरों की छँटनी होती है। छोटा-मोटा काम-धन्धा करने वालों, ग़रीब किसानों, छोटे दुकानदारों आदि का उजाड़ना और तेज़ हो जाता है। पूँजी पहले से ज़्यादा मुट्ठी भर हाथों में केन्द्रित होती जाती है। इजारेदारियाँ मज़बूत होती हैं। कोई भी सरकार पूँजीवादी ढाँचे को इस संकट से स्थायी रूप में मुक्ति नहीं दिला सकती। पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर आर्थिक संकटों का आते रहना अटल होता है और बेरोज़गारी, ग़रीबी का बढ़ना भी अटल होता है। आर्थिक मन्दी से निपटने के लिए सरकारों की तरफ़ से भी लोगों के लिए किये जाने वाले ख़र्च में कटौती की जाती है। आम जनता के ऊपर करों का बोझ और अधिक बढ़ाया जाता है। पूँजीपतियों के और बड़े स्तर पर क़र्ज़ माफ़ किये जाते हैं और उन्हें सरकारी ख़ज़ाने में से और बड़े तोहफ़े दिये जाते हैं, करों पर बड़ी छूटें दी जाती हैं। जनता इन क़दमों पर प्रतिरोध कर सकती है। इसीलिए यही कारण है कि आज संकट के दौर में साम्प्रदायिक फ़ासीवादी पार्टी भाजपा की पूँजीपति वर्ग को सबसे अधिक ज़रूरत है। भाजपा-संघ परिवार को संकटमोचक मानते हुए पूँजीपति वर्ग ने एक बार फिर उन्हें सत्ता सौंपने के लिए अपनी पूरी ताक़त चुनावों में झोंक दी थी। यह दीगर बात है कि मोदी-शाह को तीसरी बार सरकार बनाने के लिए नीतीश-नायडू के गठबन्धन का सहारा लेना पड़ा। बुर्जुआ जनवाद का रूप बरक़रार रहते, इस प्रकार के अन्तरविरोध मौजूद रहते ही हैं। बहरहाल, बेरोज़गारी और लोगों की आर्थिक समस्याओं को दूर करना ना तो इस सरकार का मक़सद था और न ही यह इसके लिए सम्भव है। पिछले दस सालों के कार्यकाल के दौरान फ़ासीवादी हुकूमत ने जनता के ऊपर आर्थिक संकट का बोझ बड़े स्तर पर डाला है और साथ ही लोगों के ग़ुस्से से निपटने के लिए अपने दमन को भी तेज़ किया है। इसके अलावा, संघ परिवार द्वारा समाज में बड़े स्तर पर साम्प्रदायिकता फैलाकर लोगों की ताक़त को कमज़ोर करने की कोशिश लगातार जारी है।

इसलिए बेरोज़गारी की समस्या का समाधान करने के लिए स्वयं जनता को एक नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना होगा जो मुनाफ़ा-केन्द्रित न होकर समाज की आवश्यकता के अनुसार हर वस्तु और सेवा का उत्पादन और वितरण करे। जिस देश के पास श्रम की शक्ति, प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी न हो, वहाँ बेरोज़गारी की कोई वजह नहीं होती। यह पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा जनित समस्या होती है। तात्कालिक तौर पर, मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी को एकजुट होकर रोज़गार गारण्टी कानून के लिए लड़ना चाहिए। यह संघर्ष तात्कालिक अधिकारों को हासिल कर ही सकता है साथ ही यह पूँजीवादी व्यवस्था की सभी को रोज़गार देने में नैसर्गिक अक्षमता को भी व्यापक जनता के सामने उजागर कर सकता है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण में उप वर्गीकरण – मेहनतकशों को आपस में बाँटने का एक नया हथकण्डा !!

(पेज 4 से आगे)

को यह समझने की ज़रूरत है कि किसी भी देश में रोज़गार के लिए 3 चीज़ों की आवश्यकता होती है -- काम करने वाले लोग, प्राकृतिक संसाधन और देश के लोगों की आवश्यकताएँ। हमारे देश में ये तीनों चीज़ें पर्याप्त मात्रा में हैं। लेकिन जब उत्पादन का लक्ष्य समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के बजाय धन्नासेठों के निजी मुनाफ़े को सुनिश्चित करना हो, तो बेरोज़गारी उसका स्वाभाविक परिणाम होता है। बेरोज़गारों की रिज़र्व आर्मी की ज़रूरत पूँजीपतियों को होती है क्योंकि उन्हें ज़रूरतमन्द और पूँजी पर निर्भर मज़दूर आबादी की आवश्यकता होती है। पूँजीवादी व्यवस्था अपनी नैसर्गिक अराजक गति से एक ओर अकूत सम्पदा पैदा करती है और दूसरी ओर व्यापक बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के लिए ग़रीबी, बेरोज़गारी, महँगाई और सामाजिक-आर्थिक अनिश्चितता और असुरक्षा पैदा करती है। यह कोई भूकम्प या बाढ़ के समान प्राकृतिक आपदा नहीं है, बल्कि व्यवस्थाजनित समस्या है जो पूँजीवादी व्यवस्था के साथ ही समाप्त हो सकती है।

इसलिए देश के दलित मेहनतकश आबादी समेत देश के मेहनतकश अवाम को यह समझना चाहिए कि आरक्षण में उपवर्गीकरण का यह फ़ैसला आम मेहनतकश के लिए कोई विशेष अर्थ नहीं रखता है। आज देश के मेहनतकश और उनके बेटे-बेटियों को यह समझना होगा कि आरक्षण का यह मुद्दा सिर्फ़ और सिर्फ़ लोगों को बाँटने के काम आता है। सत्ता में बैठे लोग हमें कभी जाति और धर्म के नाम पर तो कभी आरक्षण के नाम पर लड़ाते रहते है। ऐसी लड़ाइयों में आम मेहनतकशों का ख़ून बहता है और अस्मिता की राजनीति करने वाली तमाम पार्टियों के वोट की फ़सल बहुत अच्छी होती है। आज देश के मेहनतकश और उनके बेटे-बेटियों को यह समझना होगा कि असल सवाल आरक्षण नहीं है बल्कि सबको रोज़गार की गारण्टी है। यदि नौकरियाँ ही नहीं रहेंगी तो आरक्षण का क्या अर्थ होगा? सरकार हर हाथ को काम देने के लिए बाध्य हो ऐसे रोज़गार गारण्टी क़ानून बनाने के लिए एक जुझारू जनान्दोलन खड़े करने की ज़रुरत है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो आरक्षण मौजूद है, उस पर शासक वर्ग को अमल करने पर बाध्य न किया जाय। यानी, जहाँ कहीं शासक वर्ग और उच्च जातियों के ब्राह्मणवादी श्रेष्ठताबोध के पूर्वाग्रहों के चलते आरक्षित सीटों को नहीं भरा जाता है, वहाँ इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करना एक जनवादी संघर्ष है और हमें यह संघर्ष अवश्य करना चाहिए। लेकिन साथ ही आरक्षण को लेकर कोई विभ्रम पालना, शासक वर्गों द्वारा नये श्रेणीकरणों व उपवर्गीकरणों का लुकमा उछालने पर आपस में भिड़ जाना और सिर-फुटौव्वल करना कतई मूर्खतापूर्ण होगा, विशेषकर तब जबकि सरकारी नौकरी व शिक्षा के अवसर ही लुप्तप्राय हो चुके हैं और जो हैं वे पैसे के दमन पर धनाढ्य वर्ग ही हासिल कर सकते हैं। ऐसे में, सभी को निशुल्क व समान शिक्षा व सभी को रोज़गार की गारण्टी ही वह मसला है, जिसे संघर्ष का केन्द्रीय मसला बनाना होगा। यही जनता की क्रान्तिकारी एकजुटता को भी स्थापित करेगा।

बिजली कनेक्शन की लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए ग्रेटर नोएडा में आयोजित की गयी स्थानीय जनता की महापंचायत

कुलेसरा, सुत्याना और लखनावली की तेरह कॉलोनियों के लोग हो रहे हैं एकजुट

● रूपेश

बीते आठ सितम्बर को उत्तर प्रदेश के ग्रेटर नोएडा में बिजली कनेक्शन की समस्या को लेकर एक महापंचायत का आयोजन किया गया। यह महापंचायत हिण्डन नदी के किनारे बसे लाखों लोगों को बिजली नहीं मिल पाने की वजह से की गयी। इस महापंचायत में कुलेसरा, सुत्याना और लखनावली गाँव में बनी तेरह कॉलोनियों के हज़ारों लोगों ने हिस्सा लिया। इसका आयोजन एकता संघर्ष समिति के नेतृत्व में किया गया जिसमें नौजवान भारत सभा (नौभास) ने भी अपना समर्थन दिया।

हिण्डन नदी के किनारे लाखों लोगों के जीवन का अन्धकार

पिछले अंक में हमने बताया था कि कैसे हिण्डन नदी के किनारे बसी एक बड़ी मज़दूर-मेहनतकश आबादी आज भी बिजली जैसी बुनियादी सुविधाओं से महरूम है। ग्रेटर नोएडा में कुलेसरा, सुत्याना तथा लखनावली में हिण्डन नदी के किनारे लगभग एक दर्जन कालोनियाँ बसी है जिसमें क़रीब दस हज़ार परिवार और लगभग एक लाख से ज़्यादा लोग नदी के किनारे रहते हैं, जो आज भी अँधेरे में रहने को मजबूर हैं।

मज़दूरों और मेहनतकशों ने अपने खून-पसीने की कमाई से ज़मीन खरीदकर यहाँ मकान बनवाये हैं। ये कॉलोनियाँ पिछले बीस-पच्चीस बरसों से बस रही हैं। नोएडा-ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण जब शहर बसाने की योजना बना रही थी, जब बड़े-बड़े औद्योगिक सेक्टर बन रहे थे, जब आवासीय सेक्टरों में फ्लैट बन रहे थे, जब रियल स्टेट की बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ 'हाइराईज सोसाइटियाँ' डेवलप कर रहीं थीं, तब इनके दिमाग में कहीं भी मज़दूरों के आवास की कोई योजना नहीं थी। लाखों मज़दूर रोज़गार की तलाश में नोएडा-ग्रेटर नोएडा में आये और शहर से दूर सस्ते कमरे की तलाश में आस-पास के इलाक़ों में रहने लगे। यही वे मज़दूर हैं जिन्होंने फ़ैक्ट्री में अपना खून-पसीना बहाकर शहर का 'विकास' किया और नोएडा को "नोएडा" बनाया। पहले मज़दूरों ने औद्योगिक सेक्टरों के बीच खाली जगहों पर झुग्गियाँ बनायीं और फिर धीरे-धीरे जहाँ सस्ती ज़मीन मिली वहाँ ज़मीन ख़रीद कर मकान बनवा कर अपने परिवार के साथ रहने लगे।

आज भी एक बड़ी आबादी हर रोज़ पलायन करके नोएडा-गुडगाँव जैसे शहरों की तरफ़ आती है और कुलेसरा, सुत्याना जैसी जगहों पर सस्ते कमरे किराये पर लेकर रहती है। मगर बड़ी शर्म की बात है कि आज इक्कीसवीं सदी में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में लाखों मज़दूर परिवार बिजली कनेक्शन के बिना रहने को मज़बूर हैं। केन्द्र और राज्य में पिछले कई बरसों से भाजपा की सरकार है। 'डबल इंजन' की सरकार का दम भरने वाले भी इस गम्भीर समस्या से मुँह फेरकर बैठे हैं।

'डूब क्षेत्र' और 'अवैध कॉलोनी' कहकर बिजली विभाग तथा स्थानीय प्रशासन कई बरसों से यहाँ के लोगों को बिजली कनेक्शन देने से मना करता रहा है। लोगों ने स्थानीय विधायक तथा सांसद से भी कई बार बिजली कनेक्शन के लिए गुहार लगाई पर कोई फर्क नहीं पड़ा। लम्बे समय से यह सारे प्रयास स्वत:स्फूर्त ढंग से हो रहा था। अलग-अलग कॉलोनियों के लोग अलग-अलग प्रयास कर रहे थे। किन्तु एक सही दिशा के अभाव में तथा स्थानीय दलाल किस्म के लोगों के नेतृत्व में होने के कारण लोग एकजुट नहीं हो पा रहे थे।

परन्तु पिछले तीन महीने से यह पूरा संघर्ष सही दिशा में जा रहा है। तेरह कॉलोनियों के लोगों ने मिलकर 'एकता संघर्ष समिति' का गठन किया है जो क़ानूनी लड़ाई के साथ-साथ ज़मीनी संघर्ष भी कर रहा है। हमने बताया था कि इन कॉलोनियों में लगातार लोगों को संगठित किया जा रहा है। गली मीटिंगें बुलायी जा रहीं हैं, रैलियाँ निकाली जा रहीं हैं और लोगों को इस संघर्ष से जोड़ा जा रहा है। हर गली से वॉलण्टियर बनाये गये हैं, जो लगातार स्थानीय तौर पर सक्रिय हैं। लोग भी बढ़-चढ़कर इसमें भागीदारी कर रहे हैं।

महापंचायत का आयोजन और सरकार को चेतावनी

इसी कड़ी में महापंचायत का भी आयोजन किया गया था जिसमें अभी तक की लड़ाई और आगे के रास्ते पर मुख्य रूप से बात हुई। साथ ही बिजली विभाग, प्रशासन, राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (एनजीटी) व सरकार को चेतावनी भी दी गयी कि यदि आने वाले 27 सितम्बर को फ़ैसला लोगों के पक्ष में नहीं आएगा तो यह संघर्ष एक बड़े आन्दोलन का रूप लेगा। आपको बताते चलें कि बीते 8 अगस्त को समिति द्वारा बिजली समस्या को लेकर राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एनजीटी) में एक याचिका दायर की गयी थी जिसकी सुनवाई आने वाले 27 सितम्बर को है। अभी एनजीटी ने इस पूरे क्षेत्र में बिजली की सप्लाई पर रोक लगा रखी है। इसका कारण वे यह बताते हैं कि सरकार के अनुसार यह पूरा क्षेत्र "डूब क्षेत्र" है। जबकि दूसरी तरफ़ इसी सरकार द्वारा इस पूरे इलाक़े का पंजीकरण भी किया गया था जब लोग यहाँ अपना घर बना रहे थे।

लोगों की एकजुटता और महापंचायत ने मचायी खलबली

लोगों की एकजुटता ने स्थानीय से लेकर उत्तर-प्रदेश सरकार तक में खलबली मची हुई है। लोगों को संगठित और एकजुट होता देखकर तुरन्त बिजली विभाग द्वारा सभी कॉलोनियों का ड्रोन द्वारा सर्वे शुरू कर दिया गया है। सरकार द्वारा इस क्षेत्र के लिए स्पेशल मीटिंगें बुलायी जा रही है। लोगों के हर ट्वीट पर सरकार का जवाब आ रहा है। ख़बर तो ये भी है कि उत्तर प्रदेश के शहरी विकास और अतिरिक्त ऊर्जा विभाग मन्त्री ए के शर्मा ने ग्रेटर नोएडा की बिजली की समस्या के लिए खास बैठक तक बुलायी है।

जहाँ एक तरफ़ राजकीय स्तर पर खलबली मची है, वहीं महापंचायत के बाद से स्थानीय राजनीति में भी हलचल शुरू हो गयी है। 'एकता संघर्ष समिति' को तोड़ने के तरह-तरह से प्रयास किये जा रहे हैं। किसान संगठनों से लेकर स्थानीय दबंगों तक – सभी लोग 'बिजली कनेक्शन' के लिए सक्रिय हो गये हैं। अभी स्थानीय विधायक ने कुलेसरा में आकर 'टेम्पोरी मीटर' की घोषणा की है। इतना ही नहीं, संघर्ष को समझौते पर ख़त्म करने के भी कई प्रयास जारी हैं जिससे स्थानीय दबंगों की जेबें भी भर सकें। किन्तु एकता संघर्ष समिति और लोग ऐसे किसी भी समझौते पर मानने को तैयार नहीं और स्थायी बिजली के लिए उनका यह संघर्ष जारी है।

इस आन्दोलन को नौजवान भारत सभा का समर्थन

इस पूरे आन्दोलन को शुरू से ही नौजवान भारत सभा (नौभास) का समर्थन भी प्राप्त है। नौभास के सदस्य शुरू से ही हर सम्भव तरीके से लोगों की इस लड़ाई में भागीदारी कर रहे हैं। आपको बताते चलें की ग्रेटर नोएडा के कुलेसरा में ही नौभास द्वारा पिछले डेढ़ साल से 'शहीद भगतसिंह पुस्तकालय' चलाया जा रहा है, जहाँ लगातार छात्रों और नौजवानों के बीच तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इस पूरी लड़ायी में नौजवान भारत सभा भी लगातार सक्रिय है और पूरे जोश के साथ इसमें भागीदारी कर रहा है। चाहे पहले आयोजित की गयी जनसभा हो या फ़िर गली मीटिंग हो या रैलियाँ हो, नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता लगातार हर क़दम पर लोगों के साथ मौजूद रहे हैं। इतना ही नहीं, नौभास इस पूरे संघर्ष में डिजीटल पोस्टर तथा बैनर बनाने से लेकर दफ़्तियाँ बनाने आदि का भी काम कर रहा है। साथ ही कलात्मक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम के ज़रिये लोगों की इस लड़ाई को प्रदर्शित करने का काम भी कर रहा है। आठ सितम्बर को हुई महापंचायत में भी नौभास के साथियों ने ज़ोरदार नारे लगाने, क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत करने, दफ़्तियाँ आदि बनाने का काम किया।

यूपीएस : एनडीए सरकार द्वारा कर्मचारियों के आन्दोलन को तोड़ने की साज़िशाना और धोखेबाज़ कोशिश

(पेज 16 से आगे)

भी अधिकांश भाग पूँजीपतियों को छूट देने में जाता है। भारत में कॉर्पोरेट टैक्स लगातार कम किये जा रहे है। वर्ष 2019 से विशेष रूप में यह नीति अपनाई जा रही है कि कॉर्पोरेट टैक्स मे कमी लाई जाये, हालाँकि यह प्रक्रिया नयी आर्थिक नीतियों के साथ 1990 के दशक में ही शुरू हो गयी थी जिसे उसके बाद आने वाली हर सरकार ने कम या ज़्यादा लागू किया। अकेले वर्ष 2021 मे कॉर्पोरेट टैक्स में कमी के कारण सरकार को क़रीब एक लाख करोड़ का बजट घाटा हुआ था। लेकिन इससे सरकारी कलमघसीट अर्थशास्त्रियों की त्यौरियाँ नहीं चढ़ीं।

कॉर्पोरेट कर में छूट देने की यह नीति आज भी अपनायी जा रही है। इसी परिपाटी को आगे बढ़ाते हुए इस बार के बजट में विदेशी कम्पनियों पर लगने वाले कर को 40 फीसदी से घटाकर 35 फ़ीसदी कर दिया गया है। साथ ही, इस बार के बजट में स्टार्ट अप कम्पनियों पर लगने वाले एंजेल टैक्स को भी ख़त्म कर दिया गया है। इन सारे तरह की कर माफ़ियों का वित्तीय बोझ अन्ततोगत्वा देश की आम जनता पर ही पड़ेगा। ये आँकड़े दर्शाते है कि मौजूदा फ़ासीवादी मोदी सरकार देशी और विदेशी पूँजीपतियों की सेवा के लिए कितनी तत्पर है।

लेकिन सिर्फ़ इतना ही नहीं बैंको के ज़रिये भी सरकार अपने पूँजीपति मालिकों की हरसम्भव सेवा करती है! लगभग हर वर्ष ही लाखों करोड़ रुपये पूँजीपतियों को ऋणमाफ़ी के तौर पर दिये जाते है। अकेले सिर्फ़ 2022 - 23 में, देश के वाणिज्यिक बैंकों द्वारा क़रीब 2.09 लाख करोड़ के लोन माफ़ किये हैं। इसमें 52.3 फ़ीसदी लोन या करीब 1.9 लाख करोड़ के ऋण बड़े पूँजीपतियों के थे। वाह! आम के आम गुठलियों के दाम; एक तरफ करों में छूट तो दूसरी तरफ बैंको द्वारा दी जा रही ऋणमाफ़ी! पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी सरकार के टुकड़ों पर पालने वाले अर्थशास्त्री बताते है कि पूँजीपति देश का विकास कर रहे हैं, देश में समृद्धि का निर्माण कर रहे हैं। लेकिन ऊपर दिये गए आँकड़ों के अनुसार तो ये पूँजीपति देश पर परजीवी की भाँति बोझ बने हुए हैं।

भारत में अगर कर के ज़रिये सरकार के राजस्व आय की बात की जाये तो आयकर के तहत सरकार को प्राप्त कुल राजस्व कॉर्पोरेट कर के तहत प्राप्त कुल राजस्व से ज़्यादा हो चुका है। आयकर का एक बड़ा हिस्सा सरकारी कर्मचारियों व निजी कर्मचारियों द्वारा दिया जाता है। लेकिन इसके बावजूद सरकार देश के विकास में अपना योगदान देने वाले, सरकारी दफ़्तरों और फैक्ट्रियों में खटने वाले कर्मचारियों व मज़दूरों के प्रति बेरुख़ी दिखाती है, इनकी ही गाढ़ी कमाई का एक हिस्सा पेंशन फ़ण्ड के नाम पर कॉर्पोरेट मुनाफ़ाखोरों के हवाले कर देती है,और वेतन का जो हिस्सा बच जाता है, उस पर आयकार भी वसूल लेती है। पेंशन फ़ण्ड और आयकर के रूप मिली धन राशि को विभिन्न तरीकों से इन चन्द थैलीशाहों पर ख़र्च कर देती है। और इन कर्मचारियों को सरकार बदले में देती है बेतहाशा बढ़ती महँगाई और असुक्षित भविष्य! सेवानिवृत्ति के बाद सम्मानजनक पेंशन देने से भी सरकार अपने हाथ खींचती है।

और अन्त में...

कुल मिलाकर यूपीएस और एनपीएस में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं है। दोनों बाज़ार से जुड़ी हुई और बाज़ार पर निर्भर योजनाएँ हैं और मज़दूरों और कर्मचारियों के सेवानिवृत्ति के बाद के भविष्य को पूँजीपतियों की जुआखोरी और सट्टेबाज़ी के भरोसे कर देती हैं। ये योजनाएँ अन्ततोगत्वा बड़े कोर्पोरेट घरानों को कर्मचारियों के वेतन में कटौती के ज़रिये वित्तीय पूँजी मुहैया कराती हैं। इन दोनों ही योजनाओं से सम्मानजनक पेंशन मिलने की उम्मीद करना बेमानी ही है। इसलिए जबतक बिना कर्मचारियों द्वारा वसूले गए अंशदान पर आधारित स्थिर पेंशन देने की माँग सरकार नहीं मानती है, तब तक पेंशन की माँग को लेकर हो रहा आन्दोलन जारी रहेगा। इस आन्दोलन के दूसरे क़दम के तौर पर देश के स्तर पर सार्विक पेंशन की माँग को जोड़ना भी आवश्यक है। यह माँग संविधान द्वारा प्रदत्त जीने के अधिकार के साथ भी जुड़ती है। आन्दोलन में इस माँग के जुड़ने से ज़ाहिरा तौर पर सामान्य नागरिक भी इस आन्दोलन में शामिल होंगें।

शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के 117वें जन्मदिवस के अवसर पर

भगतसिंह को पूजो नहीं, उनके विचारों को जानो, उनकी राह पर चलने का संकल्प लो!

● अरविन्द

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं। एक वे जो अपना जांगर खटाकर दुनिया का सब कुछ पैदा करते हैं। इन्हीं के खून-पसीने की चमक क़ायनात की हर शै में झलकती है। इस मेहनतकश वर्ग के पास उत्पादन का कोई साधन नहीं होता और केवल अपनी श्रमशक्ति बेचकर ही यह ज़िन्दा रहता है। हर तरह की नियामतें पैदा करने के बाद भी इन्हें नसीब होती है भूख, ग़रीबी, कुपोषण और बदहाली। लुब्बे-लुबाव यह कि इस मेहनतकश वर्ग की मेहनत को लूटा जाता है इसीलिए यह वर्ग शोषित वर्ग कहलाता है। दूसरी तरह के लोग वे होते हैं जो प्रत्यक्षतः किसी भी उत्पादक कार्रवाई में भागीदारी नहीं करते, कोई मेहनत नहीं करते और दूसरों की मेहनत पर ऐश करते हैं। समाज के इस छोटे हिस्से के पास उत्पादन के तमाम साधनों का मालिकाना होता है। इस मालिकाने के बूते ही यह वर्ग मेहनतकशों की श्रमशक्ति ख़रीदता है और बदले में उन्हें केवल इतना देता है कि वे किसी तरह से अपना बस पेट भरकर अगले दिन काम पर आ सकें और अपने जैसे उजरती गुलामों की जमात को भी बढ़ा सकें। दूसरों की श्रम शक्ति यानी मेहनत को लूटकर ही यह वर्ग लोगों के दुःखदर्द के सागर में अपनी अमीरी और अय्याशी के टापू खड़े करता है। यह वर्ग शोषक वर्ग कहलाता है। उत्पादन के सभी साधनों पर इस वर्ग के मालिकानें के कारण ही इसे मालिक वर्ग भी कहते हैं। अपने मालिकाना हक़ और मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था को क़ायम रखने के लिए राज्यसत्ता का पूरा ढाँचा – जिसमें कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका और तमाम तरह के निकाय शामिल होते हैं – भी इसी वर्ग की सेवा करता है। अपनी राज्यसत्ता के द्वारा ही यह मेहनतकशों के वर्ग पर शासन करता है इसीलिए इस वर्ग को शासक वर्ग भी कहते हैं।

दुनिया में हर हमेशा समाज से ऐसे लोग सामने आते रहे हैं जो लूट-खसोट और अन्याय पर टिकी व्यवस्था के ख़िलाफ़ आवाज उठाते हैं, मेहनतकश जनता को एकजुट-संगठित करने की बात करते हैं, श्रम की लूट के ख़ात्मे की बात करते हैं, व्यवस्था के आमूल-चूल परिवर्तन की बात करते हैं, यानी समाज के क्रान्तिकारी बदलाव की बात करते हैं। कई बार मेहनतकशों के लिए अपनी आवाज़ को बुलन्द करने वालों के संघर्षों और शहादतों के बावजूद शोषण-उत्पीड़न पर टिकी मालिकों की व्यवस्था बनी रहती है। विभिन्न उतार-चढ़ावों के बीच मेहनतकाश जनता अपने क्रान्तिकारी शहीदों से प्रेरणा ग्रहण करती है, अपने रोज-रोज के संघर्षों से लड़ने के नये तरीके ईजाद करती है, अपने बीच से फिर नेतृत्वकारी लोगों को पैदा करती है और शोषणकारी व्यवस्था के ख़िलाफ़ बार-बार लामबन्द होती है।

शासक वर्ग हमेशा इस जुगत में रहता है कि जनता अपने क्रान्तिकारियों के विचारों को जानने न पाये। इसलिए वह अपनी शिक्षा व्यवस्था से लेकर, अख़बार, पत्रिकाओं, टी.वी., इण्टरनेट, सिनेमा आदि के माध्यम से विचारों की धुन्ध फैलाता रहता है ताकि मेहनतकश लोग अपनी क्रान्तिकारी विरासत को जान ही न सकें। शासक वर्ग इस कोशिश में रहता है कि जननायकों को या तो बुत बनाकर पूजने की वस्तु बना दिया जाये ताकि लोग बस उन्हें फूलमाला चढ़ाकर भूल जायें या फिर शहीदों के क्रान्तिकारी विचारों के बारे में षड़यंत्राकारी चुप्पी साध ली जाये जिससे कि लोग अपने संघर्षों के इतिहास को ही भूल जायें।

भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधरा और राजनीति के प्रति आज भी समाज के बड़े हिस्से की नाजानकारी इन्हीं बात को दर्शाती है। 140 करोड़ की आबादी वाले इस देश में कितने ऐसे लोग हैं जो भगतसिंह की क्रान्तिकारी राजनीति से परिचित हैं? क्या कारण है कि भगतसिंह की जेल डायरी तक उनकी शहादत के 63 साल बाद सामने आ सकी वह भी सरकारों के द्वारा नहीं बल्कि व्यक्तिगत प्रयासों से? क्या कारण है कि आज तक किसी भी सरकार ने भगतसिंह और उनके साथियों की क्रान्तिकारी राजनीतिक विचारधारा को एक जगह सम्पूर्ण रचनावली के रूप में छापने का प्रयास तक नहीं किया?

इन सभी सवालों का जवाब एक ही है कि भगतसिंह के विचार आज के शासक वर्ग के लिए भी उतने ही ख़तरनाक हैं जितने वे अंग्रेज़ों के लिए थे। कुल 23 साल की उम्र के दहकते हुए उल्कापिण्ड जैसे उनके सम्पूर्ण क्रान्तिकारी जीवन को लोगों के सामने लाना तो दूर की बात है उल्टे कई सरकारी पाठ्यक्रमों तक में भगतसिंह को महज़ एक आतंकवादी के तौर पर पेश किया जाता रहा है। संघियों ने अपने मुखपत्रों में अलग ही तान छेड़ते हुए ऐसे झूठ का प्रचार शुरू किया कि भगतसिंह और उनके साथियों के कोई क्रान्तिकारी विचार थे ही नहीं और उनके नाम पर फ़र्ज़ी दस्तावेज़ छापे जाते हैं। जो संघी ख़ुद कभी गोरो शासकों से लड़े ही नहीं और हमेशा उनके तलवे चाटते रहे वे भला और कर ही क्या सकते हैं। लेकिन इतिहास इनके हाथ की कठपुतली नहीं है,

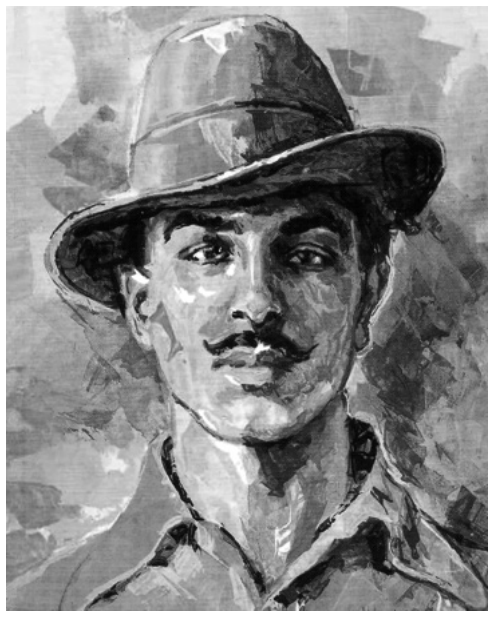

सच्चाई आख़िरकार लोगों तक पहुँच ही जाती है।

पूरा जोर लगाने पर भी शासक वर्ग देश की जनता के हृदय से भगतसिंह और उनके साथियों के प्रेम को निकालने में नाकाम रहा है। अपनी इसी नाकामी को छुपाने के लिए तमाम चुनावी धन्धेबाज़ भगतसिंह के नाम को अपनी वोट बैंक की राजनीति के लिए भुनाने की कोशिश भी करते रहते हैं लेकिन ये उनके विचारों को कभी अपनी ज़बान पर नहीं लाते। आज जब मेहनत की लूट नंगे रूप में जारी हो, जब मेहनतकशों के हक़-हुक़ूक़ को फ़ासिस्टी बूटों से कुचला जा रहा हो, जब साम्प्रदायिक दंगे करवाकर और नफ़रत भड़काकर मेहनतकश जनता की वर्गीय एकजुटता को तोड़ने के प्रयास खुलेआम हो रहे हों तो मेहनतकश जनता के लिए अपने इस महान क्रान्तिकारी के विचारों को जानना पहले से कहीं अधिक ज़रूरी हो गया है। ज़ाहिरा तौर पर, हम क्रान्तिकारी विरासत को हूबहू नहीं अपना सकते बल्कि बदले हुए हालात के अनुसार क्रान्तिकारी सार को सुरक्षित रखते हुए आज संघर्ष के तरीक़ों में बदलाव करने पड़ सकते हैं। जैसाकि ख़ुद भगतसिंह ने कहा है, हर चीज़, हर विचार को आलोचनात्मक विवेक की कसौटी पर निरख-परखकर ही अपनाना चाहिए। देश की मेहनतकश जनता के लिए भगतसिंह के विचार केवल क्रान्तिकारी धरोहर ही नहीं हैं बल्कि ऊर्जा का अजस्र स्रोत भी हैं।

भगतसिंह असल में एक व्यक्ति का नहीं बल्कि रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला खाँ, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगवतीचरण वोहरा, सुखदेव, राजगुरु आदि क्रान्तिकारियों की पूरी धारा के प्रतीक हैं। आज के समय भगतसिंह और उनकी क्रान्तिकारी धारा के विचारों को जानना न केवल दिलचस्प होगा बल्कि यह हमारे लिए बेहद ज़रूरी भी है।

हम यहाँ भगतसिंह और उनके साथियों के लेखों-बयानों से चुने हुए कुछ हिस्से पेश कर रहे हैं। इनसे आपको उनके विचारों की दिशा और उनकी ताक़त का अन्दाज़ा हो जायेगा।

"धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। जो चीज आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।"

– 'नौजवान भारत सभा लाहौर का घोषणापत्र' से

"यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति ज़्यादा दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है।"

– 'बम कांड पर सेशन कोर्ट में बयान' से

"क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना जीवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है।"

– 'बम कांड पर सेशन कोर्ट में बयान' से

"नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फ़ैक्टरी-कारख़ानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।"

– 'विद्यार्थियों के नाम पत्र' से

"भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की क़ीमत के रूप में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएँ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ़ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव ख़त्म करने में सहायक हो सकता है।"

– 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र' से

"क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है – जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाकि सभी विद्रोह तो सिर्फ़ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ाँध को ही आगे बढ़ाते हैं....भारत में हम भारतीय श्रमिकों के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयाँ, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।"

– 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' से

"युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है – चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति हों या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

– 'फांसी से तीन दिन पहले पंजाब के गवर्नर के नाम पत्र' से

"लोगों को आपस में लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत होती है। ग़रीब मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़्सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।"

– 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' से

बढ़ते स्त्री विरोधी अपराध और प्रतिरोध का रास्ता

(पेज 1 से आगे)

वाले माल में तब्दील कर दिया है। विज्ञापनों व फ़िल्मी दुनिया ने औरतों को बिकाऊ वस्तु बनाने का काम बहुत तेज़ी से किया है। वहीं बेरोज़गारी, नशा, मूल्यहीन शिक्षा, आसानी से उपलब्ध अश्लील सामग्री आदि न केवल युवाओं को बल्कि पूरे समाज को बर्बाद कर रही है, स्त्री-विरोधी मानसिकता को खाद-पानी देने का काम कर रही है।

आज हमारे देश में एक ऐसी फ़ासीवादी सरकार सत्ता में बैठी है जो अपनी मूल प्रकृति से ही स्त्री-विरोधी मानसिकता से भरी हुई है। जब भी कोई फ़ासीवादी, प्रतिक्रियावादी सरकार सत्ता में होती है तो समाज के बर्बर, बीमार और आपराधिक तत्वों को ऐसी वारदातों को अंजाम देने की खुली छूट मिल जाती है क्योंकि ऐसे तत्व ही फ़ासीवादी शक्तियों का हिस्सा होते हैं। यही कारण है कि भाजपा के केन्द्र में आने के बाद से बलात्कार और हत्या की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) का डाटा बताता है कि भारत में महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों में भयानक वृद्धि हुई है। अकेले 2022 में 4,45,256 मामले दर्ज किए गए, जो हर घण्टे लगभग 51 एफ़आईआर के बराबर है। वहीं हर रोज़ 86 महिलाओं के साथ रेप की घटनाएँ दर्ज होती है। यह वह घटनाएँ हैं जो दर्ज हो पाती है। हम जानते हैं कि हजारों घटनाएँ पुलिस स्टेशन के चक्कर काटने में ही दफ़न हो जाती है।

उन्नाव से लेकर कठुआ तक की घटनाओं में हमने देखा कि बलात्कारियों को मोदी सरकार का संरक्षण प्राप्त है। भाजपा का विधायक कुलदीप सिंह सेंगर उन्नाव में एक युवती के साथ रेप करता है और उसके पूरे परिवार की हत्या करवा देता है। कठुआ में पाँच साल के बच्ची का रेप करने वाले बलात्कारियों के पक्ष में भाजपा के नेता तिरंगा यात्रा निकालते हैं। महिला पहलवानों का यौन उत्पीड़न करने वाले बृजभूषण शरण सिंह के साथ न सिर्फ़ फ़ासीवादी मोदी सरकार बेशर्मी के साथ खड़ी होती है बल्कि उसे बचाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाती है। 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' का नारा देने वाले "प्रधानसेवक" कर्नाटक में जाकर प्रज्ज्वल रेवन्ना के लिए चुनाव प्रचार करते हैं जिसने न सिर्फ़ हज़ारों महिलाओं का बलात्कार किया है बल्कि उन्हें डराने-धमकाने के लिए उनका वीडियो रिकॉर्ड किया है। अभी हाल ही में आईआईटी बनारस में हुई बलात्कार की घटना के दोषी, जो सीधे-सीधे भारतीय जनता पार्टी के आईटी सेल से जुड़े थे, उन्हें ज़मानत मिल गयी और उनके बाहर निकलते ही उनका केक काटकर स्वागत किया गया। जब बिलकिस बानो के बलात्कारियों को जेल से छोड़ा गया था तब भी उनका फूल मालाओं से स्वागत किया गया और उन्हें संस्कारी तक बताया गया।

इसके अलावा बार-बार आसाराम, राम रहीम जैसे बलात्कारियों को पैरोल दिया जाता है। इनको न सिर्फ़ जेल से बाहर निकाला जाता है बल्कि चुनाव में इनका समर्थन हासिल करने के लिए भाजपा के नेता उनके दरबार में जाकर मत्था टेकते हैं। आप खुद सोचिए कि क्या इससे समाज के अन्य घृणित स्त्री-विरोधी मानसिकता वाले अमानवीय तत्वों का हौसला नहीं बढ़ता होगा?

क्या अन्य पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों से हम महिला सुरक्षा की उम्मीद कर सकते हैं?

बीजेपी के स्त्री विरोधी चाल-चेहरा-चरित्र तो सबके सामने है। आम मेहनतकश जनता को इनसे कोई उम्मीद भी नहीं है। लेकिन समस्या और गम्भीर तब हो जाती है जब हम इनके ख़िलाफ़ अन्य चुनावबाज़ पार्टियों से उम्मीद करने लगते हैं। 'लड़की हूँ लड़ सकती हूँ' का नारा लगाने वाली कांग्रेस जम्मू-कश्मीर में कठुआ के बलात्कारियों के पक्ष में तिरंगा यात्रा निकालने वाले व्यक्ति को चुनाव में टिकट देती है। इन चुनावबाज़ पार्टियों का दोमुँहापन हम हाल ही में पश्चिम बंगाल में हुई आरजी कर की घटना में देख चुके हैं। कैसे महुआ मोइत्रा समेत अन्य नेताओं ने, जो महिलाओं की सबसे बड़ी हितैषी बनती हैं, अपनी सरकार पर बात आते ही चुप्पी साध ली, यह सभी ने देखा।

दूसरी तरफ़ तथाकथित वामपन्थी पार्टियों की अवसरवाद की राजनीति है जो और कुछ नहीं बल्कि आम मेहनतकश जनता और उनके संघर्षों के साथ गद्दारी है। ये बातें तो गरमा-गरम और "प्रगतिशील" करते हैं। लेकिन जब खुद की सरकार पर बात आती है तो इन्हें साँप सूँघ जाता है। अभी हाल ही में केरल में जहाँ सीपीएम की सरकार है वहाँ हेमा कमेटी की रिपोर्ट आई है। यह रिपोर्ट बताती है कि मलयालम फ़िल्म जगत में अभिनेत्रियों के साथ यौन उत्पीड़न की घटनाएँ होती रहती हैं। 'नारी मुक्ति' का हो-हल्ला मचाने वाली सीपीएम पाँच सालों तक इस रिपोर्ट को दबा कर रखती है और जब यह रिपोर्ट सामने आ गई है तो इस पर चुप्पी मारकर बैठी हुई है। कमोबेश यही हाल सीपीआई (एमएल) लिबरेशन का है। इसका छात्र मोर्चा यानी आइसा के बेंगलुरु की इकाई से 40 सदस्य यह कहकर इस्तीफ़ा दे देते हैं कि उनके संगठन में पितृसत्तात्मक, समलैंगिकद्वेषी लोग हैं। इस पर लिबरेशन और इसका छात्र मोर्चा चुप्पी साधे हुए है।

अभी हाल ही में आई **एडीआर की रिपोर्ट बताती है कि 2024 के लोकसभा चुनाव में 543 जीतने वाले प्रत्याशियों में से 46 प्रतिशत (251) प्रत्याशियों के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज है।**इसके अलावा सभी जीतने वाले प्रत्याशियों में 31 प्रतिशत (170) ऐसे हैं जिनके ख़िलाफ़ बलात्कार, हत्या, अपहरण आदि जैसे गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं। बीजेपी के 240 विजयी प्रत्याशियों में से 39 प्रतिशत (94), कांग्रेस के 99 विजयी प्रत्याशियों में से 49 प्रतिशत (49), सपा के 37 में से 57 प्रतिशत (21), तृणमूल कांग्रेस के 29 में से 45 प्रतिशत (13), डीएमके के 22 में से 59 प्रतिशत (13), टीडीपी के 16 में से 50 प्रतिशत (आठ) और शिवसेना (शिंदे) के सात में से 71 प्रतिशत (पांच) प्रत्याशियों के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं। आरजेडी के 100 प्रतिशत (चारों) प्रत्याशियों के ख़िलाफ़ गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज है।

इन बातों के आधार पर आज हमें यह बात समझ लेने की ज़रूरत है कि स्त्री मुक्ति की लड़ाई किसी भी कीमत पर पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों के साथ मिलकर या उनके भरोसे रहकर नहीं लड़ा जा सकता। समूचा पूँजीपति वर्ग और उसके राजनीतिक नुमाइन्दे पितृसत्तात्मक विचारधारा से नाभिनालबद्ध हैं और उनकी राजनीति का चरित्र ही ऐसा है कि उनकी इच्छा से स्वतन्त्र उनके संगठनों व दलों का ऐसा ही स्त्री-विरोधी चरित्र हो सकता है। ये एक-दूसरे के ख़िलाफ़ 'तू नंगा तू नंगा' का खेल चाहे जितना खेलें लेकिन असलियत यह है की इस सड़ी गली, बाजबजाती हुई व्यवस्था के हमाम में सभी पूँजीवादी चुनावबाज पार्टियाँ नंगी है।

क्या स्त्रीवाद स्त्री मुक्ति का रास्ता है?

सबसे पहले तो हमें यह समझने की ज़रूरत है कि महिलाएँ हमेशा से गुलाम नहीं रही है। इतिहास के एक ख़ास वक़्त में यानी की नवपाषाण काल में कृषि की शुरुआत होती है और समाज की बुनियादी ज़रूरतों के ऊपर कुछ बेशी उत्पादन होता है। बेशी उत्पादन के साथ ही निज़ी सम्पत्ति, वर्ग और पितृसत्तात्मक परिवार अस्तित्व में आते हैं। यही से स्त्रियों के प्रति ग़ैर-बराबरी और उनके उत्पीड़न की शुरुआत होती है। लेकिन स्त्रियों का उत्पीड़न पुरुष इसलिए नहीं करते कि वे पुरुष हैं। यदि ऐसा होता तो मानव जाति के आरम्भ से ही स्त्रियों का उत्पीड़न मौजूद होता। कुछ स्त्रीवादी ऐसा मानते भी हैं, लेकिन इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। सच्चाई यह है पितृसत्ता का जन्म वर्ग और निजी सम्पत्ति के जन्म के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है।

हक़ीकत यह है कि लैंगिक पहचान *अपने आप में* स्त्रियों के उत्पीड़न का कारण नहीं है। वह एक वर्गीय समाज में उत्पीड़न का आधार बनती है। उनके उत्पीड़न की जड़ वर्ग समाज के उद्भव और निजी सम्पत्ति की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। अलग-अलग वर्ग समाजों के ताने-बाने को बनाये रखने के लिए औरतों के उत्पीड़न को अलग-अलग तरीक़े से बनाये रखना ज़रूरी रहा है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में महिलाएँ दोहरी गुलामी का शिकार है। स्त्रियों के उत्पीड़न से भी मुख्य फ़ायदा पूँजीपति वर्ग को होता है। एक ओर यह महिलाओं के सस्ते श्रम को निचोड़ कर अपना मुनाफ़ा पीटता है वहीं वह श्रमशक्ति के भौतिक और जैविक पुनरुत्पादन का ख़र्च स्त्रियों पर डाल देता है और इस प्रकार उसका निजीकरण करवा उस ख़र्च को कम भी कर देता है और उससे अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी तोड़ देता है। अगर औरतें श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन यानी बच्चों के प्रजनन व लालन-पालन, रसोई व घर के काम नहीं करती, तो श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन का ख़र्च कहीं ज़्यादा होता और उसे सीधे पूँजीपति वर्ग को ही प्रबन्धित करना पड़ता। लेकिन श्रमशक्ति की कीमत के तौर पर परिवार को गुज़ारा-भत्ता देकर पूँजीपति यह काम बेहद सस्ते में और बिना किसी सिरदर्द के स्त्रियों से करवा लेता है। इसीलिए पितृसत्ता परिवार का बने रहना पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग के लिए फ़ायदेमन्द होता है। नतीजतन, औरतें दोहरी ग़ुलामी का शिकार होती हैं: एक ओर पूँजीवाद के हाथों कारखानों व अन्य कार्यस्थलों में अपनी सस्ती श्रमशक्ति का दोहन करवाकर और दूसरी ओर परिवार के भीतर पितृसत्ता और पुरुष श्रेष्ठतावाद के हाथों उत्पीड़ित होकर।

लेकिन स्त्रीवाद इस सही दुश्मन की पहचान नहीं करता। वह या तो पुरुषों को ही शत्रु बना देता है, या फिर वह पूँजीवाद के विरुद्ध रैडिकल संघर्ष की जगह स्त्री-मुक्ति को कुछ सुधारों, हिमायत-वक़ालत की राजनीति, अर्जियाँ देने और कुछ नुमाइन्दगी हासिल कर लेने तक सीमित कर देता है। लेकिन मज़दूर औरत का दुश्मन मज़दूर पुरुष नहीं है, भले ही वह शासक वर्गों की विचारधारा यानी पितृसत्ता से प्रभावित है या उसकी जकड़ में है। पितृसत्ता की विचारधारा के कारण पुरुष मज़दूर से स्त्री मज़दूर का अन्तरविरोध जनता के बीच का अन्तरविरोध है, जनता और शत्रु के बीच का अन्तरविरोध नहीं। यह स्त्री मुक्ति के लिए वर्ग-आधारित साझा संघर्षों की प्रक्रिया में ही हल हो सकता है। लेकिन स्त्रीवाद अक्सर जनता के बीच के इसलिए अन्तरविरोध को शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोध बना देता है। इस रूप में स्त्रीवाद स्त्री मुक्ति के संघर्ष को अन्दर से खोखला करने का काम करता है। इसे न तो औरतों की गुलामी के सही कारण और उसका समूचा इतिहास सही ढंग से पता है और न इनके पास इसे ख़त्म करने का कोई ठोस कार्यक्रम है। स्त्रीवाद और कुछ नहीं बल्कि स्त्री उत्पीडन के सवाल पर पूँजीवादी राजनीतिक लाइन का प्रतिनिधित्व करता है। यह शासक वर्ग का एक ऐसा हथियार है जो पहचान की राजनीति करके आम मेहनतकश जनता को बाँटने का काम करती है। इसीलिए स्त्रीवाद कभी स्त्री मुक्ति का रास्ता नहीं हो सकता।

स्त्री मुक्ति का रास्ता इन्क़लाब का रास्ता!

सवाल यह उठता है कि क्या वाकई में इस मानवद्रोही पितृसत्तात्मक व्यवस्था से स्त्रियों की मुक्ति सम्भव है? और यदि सम्भव है तो फ़िर सही रास्ता क्या हो? जैसा कि हमने ऊपर बात की है, स्त्रियों की गुलामी हमेशा से नहीं रही है। यह एक ख़ास वक़्त में अस्तित्व में आयी। विज्ञान का नियम यह कहता है कि जो चीज़ अस्तित्व में आयी है उसे एक न एक दिन नष्ट भी होना ही है। विज्ञान का यही नियम स्त्री उत्पीड़न पर भी लागू होता है, बशर्ते कि हम सही दिशा में उसके लिए जुझारू संघर्ष करें। स्त्री उत्पीड़न के पीछे असल वज़ह पूँजीवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जिसमें महिलाएँ दोहरी गुलामी का शिकार हैं। जब तक यह व्यवस्था है तब तक हम चाहे जितना 'सेफ़ स्पेस' बना लें, कराटे सीख लें, 'राजनीतिक रूप से सही भाषा' में बात करना सीख लें, पढाई कर लें, हमारी मुक्ति सम्भव नहीं है। इसके लिए ज़रूरी है कि इस पूँजीवादी व्यवस्था को पूरी तरह से उखाड़ फेंकने के लिए सड़कों पर एक जुझारू आन्दोलन खड़ा किया जाये। इस व्यवस्था का पूर्ण रूप से ख़ात्मा ही स्त्री मुक्ति की पहली अनिवार्य शर्त है। मज़दूर सत्ता की स्थापना और समाजवाद का निर्माण ही एक लम्बी प्रक्रिया में क़दम-दर-क़दम मज़दूरों और उनके अंग की तौर पर स्त्रियों को भी मुक्त कर सकता है। पितृसत्ता वर्गों के साथ पैदा हुई थी और यह वर्गों के साथ ही ख़त्म हो सकती है। यह दूरगामी लक्ष्य है, यह लम्बी लड़ाई है, लेकिन इसकी शुरुआत हमें करनी ही होगी।

इसके लिए मज़दूर और मेहनतकश वर्गों की स्त्रियों को आगे आना होगा। उन्हें इन पूरी सोच को समझना और अपनाना होगा और इसके लिए काम करना होगा। इसके अलावा, कॉलेज-यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं को विशेष तौर पर इस लड़ाई में आगे आना होगा। अपने क्लासरूम और कॉलेज कैम्पस से बाहर निकल कर आम मेहनतकश जनता के बीच जाना होगा। कारखानों–घरों में काम करने वाली महिलाओं के बीच जाना होगा। उन्हें एकजुट और संगठित करना होगा। **इसी के आधार पर हमें वर्ग आधारित पितृसत्तात्मक विरोधी आन्दोलन खड़ा करना होगा।** और इस पूरी प्रक्रिया में हमें यह बात नहीं भूलनी होगी कि स्त्री मुक्ति की लड़ाई सिर्फ़ स्त्रियों की लड़ाई नहीं है। पितृसत्ता के गुलाम पुरुष भी होते हैं। इसीलिए स्त्री मुक्ति के संघर्ष को इस व्यवस्था को बदलने के संघर्ष के साथ जोड़कर आगे बढ़ना होगा और इसे समूची मेहनतकश जनता की लड़ाई बनाना होगा।

मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल के सौ दिन : गठबन्धन की तनी रस्सी पर फ़ासीवाद के नटनृत्य और जनता की जारी तबाही और बदहाली के सौ दिन

(पेज 1 से आगे)

का सवाल है, तो वह इसी दौर में 10.5 प्रतिशत से घटकर 9.7 प्रतिशत रह गया। यानी पक्की नौकरियों की संख्या में सापेक्षिक कमी तो आयी ही है, बल्कि निरपेक्ष कमी आयी है। क्योंकि यदि कुल रोज़गार सृजन की दर लगभग शून्य थी और पक्की नौकरियों की कुल नौकरियों में हिस्से में कमी आयी है, तो इसका अर्थ यह है कि निरपेक्ष तौर पर भी पक्की नौकरियों की संख्या में भारी कमी आयी है। यह इससे भी पता चलता है कि भारत में कुल काम-धन्धा करने वाली आबादी में कोविड के पहले 24 प्रतिशत लोग वैतनिक नौकरियाँ करते थे (पक्की और कच्ची, दोनों प्रकार की) जबकि आज यह तादाद घटकर 21 प्रतिशत रह गयी है। यानी, 3 प्रतिशत लोग तथाकथित "स्वरोज़गार" में चले गये, जिसका अर्थ कम-से-कम मेहनतकश आबादी के लिए अर्द्ध-बेरोज़गारी व पूर्ण बेरोज़गारी ही होता है। "स्वरोज़गार" की श्रेणी, यानी मोदी के पकौड़ा-विक्रेता वाली श्रेणी, तो बनायी ही बेरोज़गारी को छिपाने और पूँजीवादी सरकार को अपनी अकर्मण्यता और नाकामी को छिपाने के लिए गयी थी। 2022 में ही शहरी युवाओं में 17.2 प्रतिशत बेरोज़गार थे, जबकि ग्रामीण युवाओं में 10.06 प्रतिशत बेरोज़गार थे। लेकिन वास्तव में ग्रामीण युवाओं का आँकड़ा भी सच्चाई को छिपाता है। वजह यह कि गाँव में लोगों की एक अच्छी-ख़ासी तादाद बेरोज़गारी की स्थिति में परिवार की छोटे पैमाने की खेती में ही कुछ मदद करते हैं। कहने को यह आबादी खेती में रोज़गारशुदा होती है, लेकिन वास्तव में उसकी वहाँ ज़रूरत नहीं होती है और वह खेती के लिए फ़ाज़िल ही होती है। लेकिन यह चीज़ बेरोज़गारी के स्तर को छिपा देती है।

जहाँ तक सकल घरेलू उत्पाद, यानी, जीडीपी, यानी देश में वस्तुओं व सेवाओं के कुल उत्पादन के मूल्य, में वृद्धि का प्रश्न है, तो वास्तविक जीडीपी दर खुद भाजपा नेता सुब्रमन्यम स्वामी द्वारा पेश आँकड़ों के अनुसार 2014 से 5 प्रतिशत से ज़्यादा कभी नहीं हुई है और 2016 से यह औसतन 3.7 प्रतिशत के करीब रही है। स्वयं मोदी सरकार के आँकड़ों के अनुसार, ये जारी तिमाही में 7.3 प्रतिशत से घटकर 6.7 प्रतिशत रह गयी है। लेकिन ये आँकड़े ही फ्रॉड हैं। स्वयं एशियन पेण्ट्स जैसी एक बड़ी पूँजीवादी कम्पनी के सीईओ ने बयान दिया कि उनकी समझ में नहीं आता कि मोदी सरकार के जीडीपी वृद्धि के आँकड़े कहाँ से आ रहे हैं, क्योंकि जो अर्थव्यवस्था के उत्पादक सेक्टर हैं, उनमें तो हालत दयनीय है। वजह स्पष्ट है। आँकड़ों की हेराफेरी के अलावा, जीडीपी के बढ़े हुए आँकड़े जीडीपी के आकलन में ग़ैर उत्पादन क्षेत्र को जोड़ने के परिणाम हैं। इसे हम इस बात से समझ सकते हैं कि देश में सभी वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन से होने वाली कुल आय और देश में होने वाले कुल ख़र्च के बीच आँकड़ों में तालमेल होना चाहिए। मतलब, कोई बेच रहा है तो इसीलिए बेच रहा है कि कोई ख़रीद रहा है। बिकवाली से आमदनी और कुल ख़र्च के बीच बहुत अन्तर नहीं हो सकता है। हर देश के राष्ट्रीय एकाउण्ट में दोनों एकदम बराबर नहीं निकलते, क्योंकि आँकड़े हमेशा अपूर्ण होते हैं। लेकिन दोनों के बीच एक तालमेल होता है। लेकिन क्या भारत के जीडीपी के आँकड़ों के साथ ऐसा है। इण्डियन नेशनल स्टैटिस्टिक्स ऑफिस के आँकड़ों के अनुसार, समस्त वस्तुओं व सेवाओं से होने वाली आय में वृद्धि की दर है 7.8 प्रतिशत (अप्रैल-जून, 24 के बीच) और इसी दौर में कुल ख़र्च में वृद्धि की दर है 1.4 प्रतिशत! अब देखते हैं उन अनुत्पादक क्षेत्रों में मुनाफ़ाखोरी के आँकड़े जो वास्तव में समाज में कुल समृद्धि के उत्पादन में कोई इज़ाफ़ा नहीं करते हैं, बस एक वर्ग से दूसरे वर्ग के बीच मूल्य के स्थानान्तरण का काम करते हैं, यानी पैदा हो चुके और विनियोजित हो चुके बेशी मूल्य का पूँजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्सों में बँटवारा और साथ ही जनता की आमदनी से कटौती कर पूँजीपतियों को मूल्य स्थानान्तरण। ये सेक्टर हैं वित्त का सेक्टर, बैंकिंग सेवाओं व रियल स्टेट का सेक्टर, आदि, जो ब्याज, कमीशनखोरी, लगानखोरी पर आधारित है। ये समाज की कुल पैदावार में कुछ भी नया नहीं जोड़ते हैं, बस 'बैठे परचूनिये के समान इधर का माल उधर और उधर का माल इधर करते हैं'। इन सेक्टरों में वृद्धि दर क्या थी? 12.1 प्रतिशत! यानी, जीडीपी के आँकड़ों को गुब्बारे की तरह फुलाने में इसकी भी एक भूमिका है।

अगर जीडीपी की वृद्धि दर भारत में वाकई असल उत्पादक अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को दिखलाता तो इसकी झलकी हमें रोज़गार की दर में भी दिखलायी पड़ती। यह वृद्धि हूबहू जीडीपी वृद्धि दर से कम होती, क्योंकि पूँजीपति आपसी प्रतिस्पर्द्धा और मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध के कारण लगातार मशीनों व नयी तकनोलॉजी पर निवेश बढ़ाते हैं और इसलिए हर नया निवेश पहले की ही दर से नौकरियाँ नहीं पैदा करता है। लेकिन इसके बावजूद अगर कुल पूँजी निवेश में विस्तार मशीनों पर निवेश बढ़ने से तेज़ दर से हो रहा है, तो यह रोज़गार सृजन की सकारात्मक दर में दिखायी देगा। क्या ऐसा है? नहीं! रोज़गार सृजन दर है 0! और जीडीपी वृद्धि दर है 7.3 या 6.7 प्रतिशत! इसका अर्थ है कि जीडीपी की यह दर वास्तव में आँकड़ों में हेर-फेर करके और अनुत्पादक क्षेत्रों को जीडीपी की वृद्धि दर में शामिल करके हवा में बनायी गयी है, ताकि देश की जनता को मूर्ख बनाया जा सके। जनता तो जनता 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व तक ऐसे आँकड़ों को इस बात का सबूत मानता है कि आज भारत में कोई पूँजीवादी आर्थिक संकट नहीं है! लेकिन ताज्जुब की कोई बात नहीं है क्योंकि आम तौर पर जनता में भी पढ़े-लिखे लोग जितनी समझदारी रखते हैं, 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व उतनी समझदारी भी नहीं रखता है। यह पहले भी कई बार साबित हो चुका है और इसके नेता सुखविन्दर बार-बार आये-दिन इसे साबित करते रहते हैं। बहरहाल, सच्चाई यह है कि आँकड़ों का आकलन सही वैज्ञानिक पद्धति से किया जाय, तो भारत में वास्तविक उत्पादन अर्थव्यवस्था के आधार पर, जीडीपी वृद्धि दर 3 प्रतिशत के आस-पास ठहरती है। अगर मुद्रास्फीति से इसे सही ढंग से प्रतिसन्तुलित जाय तो यह इससे भी कम निकलेगी। यानी, वास्तव में देखें, तो भारत की अर्थव्यवस्था दीर्घकालिक मन्दी से ही गुज़र रही है।

अब अगर राजनीतिक तौर पर करें, तो पिछले 100 दिनों में मोदी सरकार के बर्ताव के कुछ प्रमुख तत्वों की बात की जा सकती है। पहला तत्व तो यह है कि मुसलमान आबादी के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी दमन को कानूनी और विधिक रूप देने के प्रस्तावों से मोदी सरकार बार-बार पीछे हटती रही है। चाहे वह सीएए-एनआरसी का ज़िक्र करना बन्द करना हो, चाहे वह "समान" नागरिक संहिता को देश के पैमाने पर लागू करने के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी फैसले को ठण्डे बस्ते में डालना हो, वक़्फ़ बोर्ड सम्बन्धी संशोधनों को संयुक्त संसदीय समिति के पास भेजने का सवाल हो। हमने पहले भी कहा था कि साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति के इन कोर प्रतीकात्मक प्रश्नों पर मोदी सरकार कदम पीछे ले सकती है क्योंकि नीतीश-नायडू की बैसाखी के साथ इन क़दमों पर अमल टेढ़ी खीर है। इससे मोदी की फ़ासीवादी सुप्रीम लीडर यानी 'फ्यूहरर' की छवि में भी गिरावट आ सकती है और आयी भी है। यह गिरावट तो चुनावी नतीजों के सामने आने के साथ ही शुरू हो गयी थी। हालाँकि इसे फ़ासीवाद के कमज़ोर होने की निशानी के तौर पर कोई मूर्ख या अज्ञानी व्यक्ति ही देखेगा। क्योंकि वास्तव में सड़कों पर, ज़मीनी स्तर पर 'गोरक्षा' नाम पर मॉब लिंचिंग, मुसलमानों के ख़िलाफ़ साम्प्रदायिक माहौल बनाने (जैसा कि शिमला में मस्जिद के मसले पर देखा जा सकता है), बुलडोज़र राज, और अलग-अलग मसलों को बहाना बनाकर मुसलमान जनता पर फ़ासीवादी गुण्डा गिरोहों के हमले में कोई कमी नहीं आयी है। उल्टे कुछ मायनों में उनमें बढ़ोत्तरी भी हुई है। राज्यसत्ता में फ़ासीवादी पकड़ को बनाये रखने और बढ़ाने के संघ परिवार के प्रयासों में भी कोई कमी नहीं है। मसलन, देश के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के घर मोदी का गणेश पूजा में जाना, विहिप के कार्यक्रमों जजों का शामिल होना, पुलिस, सशस्त्र बलों में और नौकरशाही में संघी तत्वों की पकड़ का स्पष्ट तौर पर सामने आना, अपने आप में इसी का लक्षण है। चुनाव आयोग से लेकर ईडी व सीबीआई तक अभी भी पहले के समान मोदी सरकार के इशारों पर ही काम कर रहे हैं। महाराष्ट्र में चुनावों की घोषणा न करना इसी का एक अंग था। ये सारे राज्यसत्ता के समूचे उपकरण में फ़ासीवादी शक्तियों की व्यवस्थित घुसपैठ को ही दिखलाता है, जो राज्यसत्ता के आन्तरिक 'टेकओवर' की प्रक्रिया का ही एक अंग है। निश्चित ही, चुनावी प्रदर्शन में गिरावट के कारण भाजपा को अपने खेमे में मची उथल-पुथल पर नियन्त्रण करने के लिए भी कुछ प्रयास करना पड़ रहा है।

लेकिन जहाँ तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से भाजपा के रिश्तों में कमी आने के दावों का सवाल है, तो यह दावा वही लोग कर रहे हैं, जो भारत में फ़ासीवाद की पूरी कार्यप्रणाली में संघ, उसके चुनावी फ्रण्ट यानी भाजपा और उनके आपसी तालमेल की गतिकी के बारे में कोई जानकारी नहीं है। दबे स्वरों में संघ के नेताओं द्वारा मोदी सरकार की जो घुमाफिराकर आलोचना की गयी है, उसका कारण यह है कि संघ अपनी छवि को चुनावी उतार-चढ़ाव में घसीटे जाने का हमेशा से ही प्रतिरोध करता रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के इतिहास और उसकी राजनीति पर काम करने वाले एक अध्येता धीरेन्द्र कुमार झा ने इस बात को सटीकता से पकड़ा है। झा कहते हैं के संघ द्वारा मोदी सरकार की बिना नाम लिये और घुमा-फिराकर की गयी आलोचना के पीछे संघी फ़ासीवाद का विशिष्ट चरित्र है, जिसे बहुत से मुँह वाले राक्षस के रूप में देखा जा सकता है, जिसका हर मुँह अलग-अलग बातें किया करता है। झा कहते हैं, "अब जबकि भाजपा बहुमत के आँकड़े तक नहीं पहुँच पायी, तो आरएसएस नेताओं द्वारा इसकी असफलताओं के बारे में बात की जा रही है। जब भागवत ने चुनाव अभियान में गरिमा की कमी की बात की थी, तो वास्तव में वह मुख्य चुनाव अधिकारी के रूप में बात कर रहे थे, और इस प्रकार अपने आपको एक नैतिक प्राधिकार की स्थिति में रख रहे थे। ऐसा इसलिए है कि जनता के बीच मौजूद भावना के साथ अपने आपको खड़ा दिखलाना आरएसएस के लिए प्रासंगिक बने रहने के लिए आवश्यक है।" वास्तव में, पहले भी फ़ासीवादी सरकार से अलग-अलग समय पर दूरी दिखाने का काम आरएसएस करती रही है क्योंकि यह फ़ासीवाद के एक राजनीतिक व विचारधारात्मक शक्ति के रूप में वर्चस्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इसे जो लोग भाजपा और आरएसएस के झगड़े के तौर पर देखते हैं, वे मासूम हैं। साथ ही, यह भी नहीं भूलना चाहिए कि फ़ासीवादियों के भीतर भी फ़ासीवादी शक्ति और संगठन के भीतर अपने प्रभाव को बनाने के लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है। इसलिए भागवत जो महाराष्ट्रियन ब्राह्मण संघी लॉबी को प्रधानता देते हैं, जबकि हालिया वर्षों में दत्तात्रेय होसबोले (एक कन्नडिगा ब्राह्मण) और बी. एल. सन्तोष के संघी सांगठनिक पदानुक्रम में सीढ़ियाँ चढ़ना, इस लॉबी को अखरता रहा है। लेकिन, जैसा कि झा ने दलील पेश की है, यह 'परिवार के भीतर का झगड़ा' है। इसे संघ व भाजपा के रिश्ते ख़राब होने और संघ के कमज़ोर होने के तौर पर नहीं देखा जा सकता है। सत्ता के लिए ऐसा संघर्ष संघ और भाजपा दोनों में ही पहले भी होता रहा है और फ़ासीवादियों के संगठन में हमेशा ही होता है। साथ ही, चुनावों में संघ के कार्यकर्ताओं ने प्रचार कम किया यह भी एक मिथक है, जिसे कई अतिआशावादी लिबरल फैलाते रहते हैं। झा बताते हैं कि तथ्यत: यह बात ग़लत है। ऐसा इसलिए भी है कि भाजपा के कार्यकर्ताओं का एक विचारणीय रूप से बड़ा हिस्सा सीधे आरएसएस का प्रचारक भी है।

कुल मिलाकार, राजनीतिक तौर पर, यह कहा जा सकता है कि भाजपा को स्पष्ट जनादेश न मिलने के कारण एक तात्कालिक झटका अवश्य लगा है, और जैसा कि ऐसे सभी तात्कालिक झटकों के मौकों पर होता है, इसके कारण फ़ासीवादी संगठन में आन्तरिक सत्ता प्रतिस्पर्द्धा भी बढ़ जाती है। लेकिन इसे फ़ासीवादी शक्तियों के विचारधारात्मक व राजनीतिक तौर पर कमज़ोर होने, राज्यसत्ता के ढाँचे और समाज के पोरों में उसकी पहुँच व पकड़ के कम होने के तौर पर देखना राजनीतिक नौसिखुआपन होगा और फ़ासीवाद-विरोधी शक्तियों की चौकसी को कम करने का काम करेगा।

आर्थिक और राजनीतिक, दोनों ही पैमानों पर, मोदी सरकार के 100 दिन जनता के लिए 'फ़ासीवादी दण्ड' के जारी रहने के 100 दिन ही साबित हुए हैं, चाहे उसके प्रतीतिगत रूपों में कुछ बदलाव क्यों न आये हों। यह 'दण्ड' जनता को तभी मिलता है, जब उसकी जनगोलबन्दी, उसके जन संगठन और उसका क्रान्तिकारी हिरावल तैयार नहीं हो पाता है और नतीजतन आर्थिक व राजनीतिक संकट क्रान्तिकारी मोड़ लेने के बजाय एक प्रतिक्रियावादी मोड़ लेता है। इससे देश के मेहनतकशों व मज़दूरों के लिए सबक वही है: एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण और गठन के कार्य को अधिकतम सम्भव तेज़ी से आगे बढ़ाना और जनता के विभिन्न हिस्सों और वर्गों के जुझारू क्रान्तिकारी जनान्दोलनों को जनता के ठोस मुद्दों ठोस नारों व ठोस कार्यक्रम के साथ खड़ा करना। ये ही आज के प्रमुख राजनीतिक कार्यभार हैं।

फ़ासिस्ट मोदी-शाह सरकार के तीसरे कार्यकाल में भीड़ द्वारा हत्या (मॉब लिंचिंग) के बढ़ते मामलों का क्या मतलब है

● आशीष

तीसरी बार फ़ासिस्ट मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद भीड़ द्वारा पीट-पीटकर मार देने (मॉब लिंचिंग) के मामले में तेज़ गति से बढ़ोत्तरी हुई है। पिछले दिनों देश के अलग-अलग हिस्सों से मॉब लिंचिंग की अनेक घटनाएँ सामने आयी हैं। हरियाणा के चरखी दादरी में साबिर अली नामक एक 26 वर्षीय प्रवासी मज़दूर के ऊपर गोमांस खाने का आरोप लगाकर उसकी हत्या कर दी गयी। फ़रीदाबाद में उन्मादियों ने आर्यन मिश्रा नामक एक हिन्दू युवक को गौ तस्कर बताकर उसकी हत्या कर दी। महाराष्ट्र में चलती ट्रेन में एक बुजुर्ग से मारपीट की घटना सामने आयी। ट्रेन में साथ यात्रा कर रहे कुछ लोगों ने बुजुर्ग पर बीफ़ लेकर चलने का आरोप लगाते हुए उन्हें थप्पड़ मारे और गालियाँ दीं। बिहार के बेगूसराय में बकरी चोरी के आरोप में भीड़ ने एक युवक को पीट-पीट कर मार दिया और उसके एक साथी को अधमरा कर दिया। पटना के जक्कनपुर एवं नौबतपुर में दो अलग घटनाओं में भीड़ ने चोरी के शक के आधार पर दो युवकों की हत्या कर दी। छत्तीसगढ़ के रायपुर में दो मुस्लिम युवकों की पीट-पीटकर हत्या कर दी गयी। यूपी के मुरादाबाद और अलीगढ़ में भी मुस्लिम युवकों को फ़ासिस्ट भीड़ द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। अलीगढ़ में 35 वर्षीय व्यक्ति मुहम्मद फ़रीद उर्फ़ औरंगज़ेब को कथित तौर पर चोरी के आरोप में भीड़ ने पीट-पीटकर मार डाला। राजस्थान में गौ तस्करी के नाम पर दो हिन्दू युवकों की हत्या कर दी गयी। सोशल मीडिया पर वायरल एक वीडियो में मोहम्मद उमर क़ुरैशी नाम के एक शख़्स ने बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद (विहिप) के लोगों पर उनके साथ मारपीट का आरोप लगाया और कहा कि उन लोगों ने उनसे पैसे लूटे और 'जय श्री राम' बोलने को मजबूर किया। तेलंगाना में मिन्हाज उल उलूम मदरसा प्रबन्धन द्वारा बकरीद पर मवेशी ख़रीदने के बाद दक्षिणपन्थी संगठनों के सदस्यों ने मदरसे पर हमला कर दिया। इसमें कई लोगों को चोटें आयीं और उन्हें इलाज़ के लिए स्थानीय अस्पताल में भर्ती कराया गया। बाद में भीड़ ने अस्पताल पर भी हमला और पथराव किया। हिमाचल प्रदेश के नाहन शहर में एक मुस्लिम व्यक्ति के कपड़े की दुकान में इसलिए तोड़फोड़ और लूटपाट की गयी क्योंकि उस शख़्स ने अपने व्हाट्सएप स्टेटस पर पशु बलि की तस्वीरें पोस्ट की थीं। उग्र भीड़ का दावा था कि यह गोमांस है। घटना के दौरान पुलिस मूकदर्शक बनकर खड़ी रही, जब सैकड़ों की संख्या में मौजूद

भीड़ 'एक ही नारा, एक ही नाम, जय श्री राम' जैसे साम्प्रदायिक नारे लगा रही थी। बाद में पुलिस की पड़ताल में साबित हुआ कि वह तस्वीरें गाय की नहीं थीं। पश्चिम बंगाल में भीड़ ने एक मन्दिर के पास मांस फेंकने के आरोप में एक मुस्लिम युवक को बुरी तरह मारा।

ये सारी घटनाएँ अनायास नहीं हैं। अक्सर इन घटनाओं को अंजाम देने में आरएसएस-भाजपा से सम्बन्ध रखने वाले विश्व हिन्दू परिषद, गौरक्षा दल, बजरंग दल आदि से जुड़े फ़ासिस्ट लम्पट गुण्डा गिरोह का सीधा हाथ होता है। मॉब लिंचिंग में संलिप्त अपराधियों के साथ भाजपा नेताओं की साँठगाँठ छिपी हुई नहीं है। 2018 में मॉब लिंचिंग की सज़ा काटने के बाद जमानत पर रिहा हुए आठ अपराधियों को भाजपा के केन्द्रीय मन्त्री जयन्त सिन्हा ने फूलमाला पहनाकर स्वागत किया था। उस समय भाजपा कार्यालय में मिठाई भी बाँटी गयी थी। अभी चरखी दादरी, हरियाणा की मॉब लिंचिंग की घटना को तो हरियाणा के मुख्यमन्त्री नायाब सिंह सैनी ने मॉब लिंचिंग मानने से ही इन्कार कर दिया। यही नहीं इन्होंने गाय को ग्रामीण लोगों की भावनाओं से जुड़ा बताकर स्पष्ट तौर पर हत्यारों का न केवल बचाव किया बल्कि हत्या और ज़ुल्म का शिकार लोगों को ही इस तरह के संसाधनों में संलिप्त न होने की नसीहत भी दे डाली। जबकि असल में हत्यारे गिरोह का आम लोगों ने विरोध किया था और प्रवासी श्रमिक को बचाने का प्रयास किया था लेकिन गौ-गुण्डे उसे उठाकर दूसरी जगह ले गये, जहाँ उसे मार डाला गया। फ़रीदाबाद का मसला दर्शाता है कि गाय की तथाकथित रक्षा के नाम पहरेदारी करते घूम रहे गुण्डा गिरोह किसी की भी हत्या कर सकते हैं। कोई मुस्लिम है तो उसे तो तुरन्त ही गौ-तस्कर साबित करके मारना इनके लिए जायज़ है। फ़ासिस्ट दौर में इसे ही पुलिस और न्याय व्यवस्था का दिवाला निकलना कहते हैं। भावना को ठेस का मसला बताकर तो किसी भी हत्या को जायज़ ठहराया जा सकता है, तो पुलिस प्रशासन, न्याय व्यवस्था और सरकार का अमली जामा क्या घास छीलने के लिए बैठा हुआ है!

भाजपा के गाय प्रेम की असलियत!

हरिशंकर परसाई ने ठीक ही कहा था, "विदेशों में जिस गाय का दूध बच्चों को पुष्ट कराने के काम आता है, वही गाय भारत में दंगा कराने के काम में आती है।" भाजपा के लिए गाय एक राजनीतिक पशु है। हिन्दी प्रदेशों में भाजपा गौ रक्षा के नाम पर वोट हासिल करती है। तथाकथित गौ रक्षक गुण्डे गाय के नाम पर भीड़ द्वारा हिंसा को अंजाम देते हैं। पूर्वोत्तर और दक्षिण के राज्यों में भाजपा के नेता बीफ़ सप्लाई पर बैन नहीं लगाने और सत्ता में आने के बाद सर्वोत्तम गुणवत्ता की बीफ सप्लाई का वायदा करते हैं। भाजपा नेता किरण रिजिजू खुलेआम बयान देते है कि वह बीफ़ खाते हैं।

कुछ समय पहले तक भाजपा नेता संगीत सोम देश के बड़े बूचड़खाने में से एक का मालिक था। अभी कुछ समय पहले भाजपा सरकार के केन्द्रीय जहाजरानी मन्त्री शान्तनु ठाकुर ने बीएसएफ से सिफ़ारिश किया कि उनके एक जानकार सज्जन को सीमापार तीन किलोग्राम बीफ़ ले जाने की अनुमति दी जाये। अगर गाय पवित्र है तो पूरे हिन्दुस्तान में भाजपा गौ मांस पर बैन क्यों नहीं लगा देती? इलेक्टॉरल बॉण्ड के खुलासे से जाहिर है कि पिछले चुनाव में भाजपा ने बीफ़ निर्यातक कम्पनियों से करोड़ों रुपए चन्दा लिया था। भाजपा को गाय से कोई वास्तविक हमदर्दी होती तो इनके लोगों द्वारा संचालित गौशालाओं में गायें तिल-तिलकर मर नहीं रही होतीं। असल में इनका गायप्रेम केवल ढकोसला है।

मॉब लिंचिंग की वारदातों में क्यों वृद्धि हो रही है?

2014 में सत्ता में क़ाबिज़ होने के बाद से मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों के परिणामस्वरूप बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी एवं सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा बढ़ी है। इन समस्याओं से त्रस्त जनता के गुस्से को फ़ासिस्ट गिरोह द्वारा किसी काल्पनिक शत्रु के मत्थे मढ़ देने का काम कुशलतापूर्वक किया जा रहा है। इस काल्पनिक शत्रु के दायरे में धार्मिक अल्पसंख्यक विशेषकर मुसलमान आते हैं और बाद में इस काल्पनिक दुश्मन की छवि में दलित, आदिवासी, ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता व कम्युनिस्ट सभी को समेट लिया जाता है। 2014 के बाद से ही इस काल्पनिक शत्रु के श्रेणी से आने वाले लोगों को अलग-अलग तरीके से निशाना बनाया जा रहा है और इनके ख़िलाफ़ मॉब लिंचिंग की असंख्य वारदातों को अंजाम दिया गया है। पहले से ही कमज़ोर और अब फ़ासीवाद द्वारा पंगु बना दिये गये भारतीय बुर्जुआ जनवाद और उसकी संवैधानिक संस्थाओं और गोदी मीडिया के भोंपू तन्त्र के भरपूर सहयोग के बावजूद जनता के एक हिस्से में फ़ासिस्ट गिरोह की कलई उजागर हो रही है। धाँधली और तीन-तिकड़म के बाद भी गठबन्धन की बैसाखी से तीसरी बार सत्ता में पहुँचने बाद फ़ासिस्ट गुण्डा गिरोह बुरी तरह बौखलाया हुआ है। मॉब लिंचिंग सरीखे नफ़रती खेल के ज़रिये विधानसभा चुनावों में सफलता हासिल करने के जुगत में है। मज़दूर व आम मेहनतकश लोग ही ज़्यादातर मामलों में इस खेल का शिकार हो रहे हैं, हमें इस खेल की असलियत का भण्डाफोड़ करना होगा। हिटलर और मुसोलिनी के इन वंशजों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना ही होगा! वरना काठ की हाँडी बार-बार चढ़ती रहेगी।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला के विषय में एक आवश्यक सम्पादकीय सूचना

साथियो,

हमने क़रीब दो वर्ष पहले जब क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला के रूप में मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक का एक श्रृंखला के रूप में प्रकाशन शुरू किया था तो हमें इस बात का अन्दाज़ा नहीं था कि मज़दूर व मेहनतकश साथियों और साथ ही छात्रों, युवाओं व बुद्धिजीवी साथियों के बीच से उसे इतनी अच्छी प्रतिक्रिया मिलेगी। इस शिक्षणमाला का लक्ष्य है वैज्ञानिक मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों को जितना सम्भव हो सरल रूप में व्यापक मेहनतकश व छात्र-युवा आबादी के समक्ष पेश करना। मोटे तौर पर अब तक हम इस लक्ष्य में सफल रहे हैं। अब तक प्रकाशित श्रृँखला मार्क्स की महान युगान्तरकारी रचना पूँजी के पहले खण्ड तक की शिक्षाओं को समेटती है। यह माल व उसके बुनियादी गुणों, माल उत्पादन की विशिष्टताओं, मूल्य के नियम, बेशी मूल्य, पूँजी द्वारा बेशी मूल्य के पैदा होने और फिर बेशी मूल्य के पूँजी में तब्दील होने की प्रक्रिया को तार-तार करके आपके सामने रखती है। यह पूँजी संचय के आम नियम को व्याख्यायित करती है और साथ ही आदिम संचय के रूप में पूँजी-श्रम सम्बन्ध के पैदा होने के ऐतिहासिक आधार को स्पष्ट करती है। इसके अलावा, यह मज़दूरी, कार्यदिवस, बेशी मूल्य को बढ़ाने के पूँजीपति वर्ग के तौर-तरीक़ों आदि पर भी तफ़सील से चर्चा करती है। अब तक जारी श्रृँखला के साथ मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की पुस्तक, जिसे हम श्रृंखला के रूप में 'मज़दूर बिगुल' में प्रकाशित करते रहे हैं, का पहला खण्ड पूर्ण हो चुका है। इस अंक में हम दूसरे खण्ड के पहले अध्याय का प्रकाशन नहीं कर रहे हैं। वह अगले अंक से जारी होगा। इसी बीच पहले खण्ड के सम्पादन और उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का काम भी शुरू कर दिया जायेगा। अगले खण्ड में हम पूँजीवादी व्यवस्था में परिसंचरण की प्रक्रिया और पुनरुत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के विश्लेषण की शुरुआत करेंगे। इसलिए इस अंक में हम एक विराम दे रहे हैं। उम्मीद है हमारे पाठक इस श्रृँखला को उतने ही चाव से पढ़ना जारी रखेंगे और आगे भी हमें उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया देते रहेंगे।

– सम्पादक

केरल में भूस्खलन एवं असम और आन्ध्र-तेलंगाना में बाढ़ से भीषण तबाही

ऐसी आपदाओं से निजात पाने के लिए पूँजीवाद से निजात पानी होगी

● आनन्द

पिछले दो महीनों के दौरान देश के विभिन्न हिस्सों में भारी बारिश से भूस्खलन और बाढ़ जैसी आपदाओं में सैकड़ों लोग मारे गए और लाखों लोग उजड़ गए। जुलाई में केरल के वायनाड ज़िले में स्थित पहाड़ियों में भारी बारिश के बाद हुए भूस्खलन से चार गाँवों का वजूद ही ख़त्म हो गया और क़रीब 300 लोग मारे गए। जुलाई महीने में ही असम में भारी बारिश के बाद आयी बाढ़ से राज्य के 26 जिले प्रभावित हुए और क़रीब 80 लोगों की मौत हो गयी तथा तक़रीबन 17 लाख लोग अपने घरों से उजड़ गए। अगस्त के आखिर और सितम्बर की शुरुआत में बंगाल की खाड़ी में निम्न दबाव का क्षेत्र बनने की वजह से आन्ध्र प्रदेश व तेलंगाना में कई दिनों तक भारी बारिश हुई जिसमें 80 से ज़्यादा लोग मारे गए, एक लाख से ज़्यादा लोग प्रभावित हुए तथा हज़ारों एकड़ ज़मीन में उगायी गयी फ़सलें बर्बाद हो गयीं। सरसरी तौर पर देखने पर ये आपदाएँ कुदरत का कहर जान पड़ती हैं जिनके सामने इन्सान ख़ुद को असहाय पाता है, लेकिन सावधानी से देखने पर हम पाते हैं कि असामान्य तौर पर अधिक वर्षा, भूस्खलन, बाढ़ आदि के लिए कुदरत नहीं बल्कि पूँजीवादी विकास ज़िम्मेदार है और अगर विकास का लक्ष्य मुनाफ़ा न होकर लोगों की ज़रूरतें पूरी करना हो तो ऐसी आपदाओं से बचा जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान कम समय में असामान्य रूप से अधिक बारिश की परिघटना बढ़ती हुई दिख रही है जो सीधे तौर पर जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हुई है। अब इसमें कोई शक नहीं रहा कि जलवायु परिवर्तन एक सच्चाई है और यह पूँजीवादी विकास का ही नतीजा है। पिछली कुछ शताब्दियों के दौरान दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मुनाफ़े को अधिक से अधिक करने की सनक में पृथ्वी के वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों के बेहिसाब उत्सर्जन के वजह से उनकी अधिकता होने से दुनिया के विभिन्न हिस्सों में जलवायु में अनिश्चितता और असामान्यता बढ़ी है और साथ ही आपदाओं की बारम्बारता और उनकी भयावहता भी बढ़ी है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन की वजह से मौसम की बढ़ी अनिश्चितता सूखे और बाढ़ दोनों प्रकार की विभीषिकाओं को जन्म देती है। दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बढ़ती गर्मी और असामान्य वर्षा की परिघटनाएँ चीख-चीख कर जलवायु परिवर्तन की वास्तविकता की गवाही दे रही हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि जलवायु परिवर्तन का सबसे ज़्यादा कहर आम मेहनतकश आबादी को ही झेलना पड़ता है।

केरल में भूस्खलन से मची भयानक तबाही

केरल में स्थित पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में भूस्खलन पहले भी होते रहे हैं। परन्तु गत 30 जुलाई की रात में वायनाड के मुंडक्कई पुंजिरिमैट्टम, चूरलमाला और अट्टामाला नामक गाँवों में भूस्खलन का जो मंजर देखने में आया वह केरल ही नहीं बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में अभूतपूर्व था। जब भूस्खलन हुआ तो इन गाँवों के निवासी सो रहे थे और उन्हें सँभलने का मौक़ा भी नहीं मिला। सुबह तक ये गाँव मलबे और कीचड़ में तब्दील हो चुके थे। यह भूस्खलन क़ुदरत की एक चेतावनी है कि अगर पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में अँधाधुँध पेड़ों की कटाई, निर्माण, खनन और उत्खनन जैसी गतिविधियों पर नकेल नहीं कसी गयी तो आने वाले दिनों में इससे भी भयंकर त्रासदी के मंजर देखने को मिलेंगे।

ग़ौरतलब है कि केरल के वायनाड ज़िले में स्थित पहाड़ियाँ पारिस्थितिकी के लिहाज़ से पश्चिमी घाट के सबसे संवेदनशील क्षेत्रों में आती हैं। साल 2011 में प्रसिद्ध पर्यावरणशास्त्री माधव गाडगिल की अध्यक्षता में बने पश्चिमी घाट पारिस्थितिकी विशेषज्ञ पैनल ने ऐसी आपदाओं के बारे में आगाह किया था और बताया था कि पश्चिमी घाट का 64 प्रतिशत हिस्सा पारिस्थितिकी के लिहाज़ से बेहद संवेदनशील है और इन हिस्सों में आपदाओं से बचने के लिए पेड़ों की कटाई, निर्माण, खनन और उत्खनन जैसी कार्रवाईयों पर रोक लगाने की ज़रूरत है। ऐसे इलाक़ों में वायनाड भी शामिल है। ग़ौरतलब है कि पहाड़ों पर स्थित पेड़ वहाँ की नाज़ुक ज़मीन के लिए कवच का काम करते हैं। पेड़ों की मौजूदगी में बारिश का पानी सीधे ज़मीन पर नहीं गिरता है जिसकी वजह से उसकी धार कम हो जाती है और उसके ज़मीन द्वारा सोख लेने की सम्भावना बढ़ जाती है। लेकिन पेड़ों की कटाई होने से बारिश का पानी तेज़ रफ़्तार से सीधे ज़मीन पर पड़ता है और अपने साथ मिट्टी को लेकर ढलान से नीचे घाटियों की ओर बह जाता है। साथ ही पहाड़ों की चट्टानों पर बारिश का पानी सीधे पड़ने से उनकी अस्थिरता बढ़ जाती है और भूस्खलन का ख़तरा बढ़ जाता है। इसी प्रकार निर्माण कार्य, खनन व उत्खनन की गतिविधियाँ भी पहाड़ों की चट्टानों के दरकने और उसके नतीजे में भूस्खलन की सम्भावना को बढ़ाती हैं। यही वजह है कि गाडगिल पैनल ने इन गतिविधियों पर रोक लगाने की सिफ़ारिश की थी। परन्तु केन्द्र व राज्य सरकारों ने इन सिफ़ारिशों पर कोई ध्यान नहीं दिया। बाद में गाडगिल पैनल की रिपोर्ट का मूल्यांकन करने के लिए कस्तूरीरंगन कमेटी बनायी गयी जिसने गाडगिल पैनल की रिपोर्ट में दी गयी सख़्त सिफ़ारिशों पर लीपापोती करते हुए सीमित रूप से निर्माण कार्य, खनन व उत्खनन की गतिविधियों पर रोक लगाने की बजाय उनको नियन्त्रित करने की सिफ़ारिश दी। लेकिन कॉरपोरेटों, बिल्डरों, खनन माफ़ियाओं और ठेकेदारों के हितों की नुमाइन्दगी करने वाली सरकारों ने इस रिपोर्ट पर भी कोई ठोस कार्रवाई कार्रवाई नहीं की। ग़ौरतलब है कि केरल में पिनाराई विजयन के नेतृत्व वाली फ़र्जी वामपन्थी सरकार ने भी पारिस्थितिकी से जुड़े इतने अहम मुद्दे पर कोई कार्रवाई नहीं की और वायनाड में विकास के नाम पर विनाश की गतिविधियों को बदस्तूर जारी रखने दिया। इसके अलावा, वायनाड ज़िले में भारी बारिश के बाद भूस्खलन की प्रबल सम्भावना होने के बावजूद ग्रामीणों को कोई चेतावनी नहीं दी गयी तथा न तो केन्द्र सरकार ने और न ही राज्य सरकार ने ऐसी आपदाओं से बचने के लिए पहले से कोई तैयारी की। आपदा प्रबन्धन की पूरी सरकारी मशीनरी आपदा होने के बाद जाकर सक्रिय होती है। आपदा को रोकने की दिशा में कोई क़दम नहीं उठाया जाता है।

असम में बाढ़ की विभीषिका

जुलाई के पहले सप्ताह में असम व उत्तर-पूर्व के अन्य राज्यों में भारी बारिश हुई जिसकी वजह से असम के दर्जनो ज़िले भीषण बाढ़ की चपेट में आ गए। बारिश की वजह से ब्रह्मपुत्र और उसकी दर्ज़नों सहायक नदियाँ ख़तरे के निशान से ऊपर बहने लगीं और बाढ़ का पानी इन नदियों के किनारे बसे गाँवों, क़स्बों और शहरों में फैल गया। असम के उत्तर में अरुणाचल प्रदेश के पहाड़ों और दक्षिण में मेघालय की पहाड़ियों में हुई भारी बारिश का पानी ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों में जमा होने की वजह से बाढ़ का स्वरूप और भयावह हो गया। असम सहित उत्तर-पूर्व के समूचे इलाक़े में हाल के वर्षों में असामान्य बारिश और बादल फटने की कई घटनाएँ सामने आयी हैं जो जलवायु परिवर्तन का ही नतीजा है। इसके अलावा पेड़ों की अँधाधुँध कटाई और बेरोकटोक निर्माण व खनन-उत्खनन की गतिविधियाँ आग में घी डालने का काम कर रही हैं। भारी बारिश, वन-विनाश और अन्धाधुन्ध निर्माण, खनन-उत्खनन की वजह से पहाड़ों की ढलान से बहकर आया गाद और कीचड़ नदियों में जमा होता है जो बाढ़ की विभीषिका को कई गुना बढ़ा देता है।

ऐसा नहीं है कि असम सरकार या केन्द्र सरकार को बाढ़ की इस विभीषिका की वजहों के बारे में कुछ पता नहीं है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने असम के 40 प्रतिशत क्षेत्र को बाढ़ की सम्भावना वाले क्षेत्रों में घोषित किया है। वहाँ बाढ़ नियमित अन्तराल पर आती रहती है, लेकिन फिर भी उसपर काबू पाने और उससे होने वाले नुक़सान को कम करने के लिए कोई समग्र योजना नहीं बनायी जाती है। राज्य में सैकड़ों तटबन्ध अब जर्जर हो चुके हैं और बाढ़ रोकना तो दूर वे बाढ़ को बढ़ावा देने की काम कर रहे हैं क्योंकि उनसे निकला गाद और कीचड़ नदियों की तलहटी पर जमा होकर बाढ़ को और भीषण बना देता है।

हद तो तब हो गयी जब बाढ़ की बेहिसाब त्रासदी के आलम में भी असम का भाजपाई मुख्यमन्त्री हिमन्त बिस्वा सरमा अपनी ज़हरीली ज़ुबान से मुस्लिम समुदाय के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने से बाज़ नहीं आया। लव-जिहाद, लैण्ड जिहाद के फ़र्जी ज़हरीला दुष्प्रचार तो वह आए दिन करता ही रहता है, बाढ़ की त्रासदी के समय उसने बाढ़-जिहाद का नया जुमला उछाला। असम में हुए अनगिनत अवैध निर्माणों में से उसने एक निजी विश्वविद्यालय को बलि का बकरा बनाया क्योंकि उसका मालिक एक मुस्लिम है। ये है भाजपा का बाढ़ नियन्त्रण का तरीक़ा! ऐसे फ़ासिस्ट शासन में अगर बाढ़ से इतनी भीषण तबाही मच रही है तो इसमें ताज्जुब की बात नहीं है। पूँजीवाद अपनी मरणासन्न अवस्था में मानवता को ऐसी त्रासदियाँ ही दे सकता है।

आन्ध्र प्रदेश व तेलंगाना में भारी बारिश के बाद आयी बाढ़

अगस्त के अन्तिम दिनों और सितम्बर के शुरुआती दिनों में बंगाल की खाड़ी में शुरू हुए निम्न दबाव के क्षेत्र के कारण आन्ध्र प्रदेश व तेलंगाना में भी भारी बारिश हुई जिसके बाद इन दो राज्यों के कई ज़िले भीषण बाढ़ की चपेट में आए और बड़े पैमाने पर जान-माल की क्षति हुई। आन्ध्र प्रदेश के विजयवाड़ा शहर में बाढ़ का पानी घुस गया और उसके बाद कई दिनों तक जनजीवन अस्तव्यस्त रहा। केरल और असम की तरह आन्ध्र-तेलंगाना में भी भारी बारिश जलवायु परिवर्तन का ही नतीजा है। विजयवाड़ा जैसे शहरों में आयी भीषण बाढ़ की मुख्य वजह अनियोजित शहरीकरण की परिघटना है। देश के तमाम शहरों की ही तरह विजयवाड़ा और हैदराबाद जैसे शहरों के जलाशयों को पाटकर उनपर बिल्डर माफ़िया द्वारा अपार्टमेण्ट, होटल-रिसॉर्ट और अम्यूज़मेण्ट पार्क बनाए जा रहे हैं जिसकी वजह से इन शहरों में प्राकृतिक जलनिकास प्रणाली तबाह हो चुकी है। ग़ौरतलब है कि इन शहरों की झीलें, तालाब व अन्य जलाशय प्राकृतिक रूप से जलनिकासी के लिए बेहद अहम हुआ करती थीं। परन्तु मुनाफ़े की अन्धी हवस को पूरा करने के लिए हो रहे अनियन्त्रित शहरीकरण की प्रक्रिया में एक ओर इस प्राकृतिक प्रणाली की तबाही हो रही है वहीं दूसरी ओर वैकल्पिक जलनिकासी की कोई समग्र योजना नहीं बनायी जा रही है। यही वजह है कि थोड़ी-सी बारिश होने पर ही इन शहरों में भीषण जलभराव की समस्या पैदा हो जाती है। ख़ासकर नदियों, जलाशयों और नालों के आसपास निचले इलाक़ों में रहने को मजबूर मेहनतकश आबादी के लिए हर साल बारिश का मौसम एक कहर के समान होता है। अगर बारिश ज़्यादा हो जाती है, जैसाकि इस साल हुआ तो फिर यह समस्या और विकराल होकर भीषण बाढ़ का रूप अख़्तियार कर लेती है।

शहरों में जलभराव और बाढ़ की समस्या से निपटने के नाम पर तेलंगाना के मुख्यमन्त्री रेवन्त रेड्डी ने हाल ही में हैदराबाद डिजास्टर रिस्पॉन्स और एसेट प्रोटेक्शन एजेन्सी (हाइड्रा) नामक एक संस्था बनायी है जिसकी बहुत चर्चा हो रही है। यह संस्था हैदराबाद शहर की तमाम झीलों व जलाशयों के आसपास हुए अवैध निर्माण को ध्वस्त करके जलभराव व बाढ़ की समस्या का समाधान करने का दावा करती है। कई पर्यावरणवादी भी रेवन्त रेड्डी के इस क़दम से अभिभूत हो रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश के उपमुख्यमन्त्री पवन कल्याण ने भी इस संस्था की प्रशंसा की है और आन्ध्र प्रदेश में भी ऐसी संस्था बनाने की बात कही है। हाइड्रा ने हैदराबाद में कुछ रसूख़दार लोगों (मिसाल के लिए तेलुगू फ़िल्म स्टार नागार्जुन) के अवैध फ़ार्म हाउस को बुलडोज़र से गिराकर यह जताने का प्रयास किया है कि अमीरों और हैसियतदार लोगों को भी नहीं बख़्शा जायेगा। परन्तु हम जानते हैं कि पूँजीवादी राज्यसत्ता की किसी संस्था को जब बुलडोज़र इस्तेमाल करने की ताक़त दी जाती है तो निर्विवाद रूप से उसके निशाने पर ग़रीब व मेहनतकश आबादी ही होती है। हाइड्रा भी शुरू में दिखाने के लिए कुछ रईसों के अवैध निर्माण ध्वस्त करने के बाद अब ग़रीबों-मेहनतकशों के रहने की जगहों को तबाह करने के काम में जुट गयी है और हैदराबाद में कई जगहों पर उसके ख़िलाफ़ जनप्रदर्शन भी शुरू हो चुके हैं। रेवन्त रेड्डी को अगर अवैध निर्माण से वाक़ई दिक़्क़त है तो वह हैदराबाद शहर में बिल्डर माफ़िया को आगे से कोई भी ठेके न देने का फ़ैसला करते, परन्तु तेलंगाना सरकार ने ऐसा कोई भी क़दम नहीं उठाया है।

सच तो यह है कि जब तक पूँजीवाद रहेगा तब तक भूस्खलन और बाढ़ जैसी आपदाओं की बारम्बारता और भयावहता बढ़ती ही जायेगी। पूँजीवाद के दायरे में पर्यावरण को बचाने और पारिस्थितिक तन्त्र को स्थिर करने की तमाम कोशिशों के बावजूद अगर यह संकट कम होने की बजाय तीखा ही होता जा रहा है तो ऐसा इसलिए है कि मुनाफ़ा-केन्द्रित और अनियोजित विकास पूँजीवाद की संरचना में ही निहित है। मुनाफ़े की दर को लगातार बढ़ाते जाने की ज़रूरत पूँजी को नियन्त्रण और नियोजन की दीवारों को तोड़कर बेक़ाबू होने पर मजबूर करती है। इस समस्या के समाधान की दिशा में तभी आगे बढ़ा जा सकता है जब सामाजिक उत्पादन की प्रेरणा मुनाफ़ा न होकर लोगों की ज़रूरत पूरा करना हो। केवल तभी जलवायु परिवर्तन, पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई, बेरोकटोक खनन-उत्खनन की प्रक्रिया को काबू में लाया जा सकता है। केवल ऐसे समाज में ही न सिर्फ़ फ़ैक्टरी के भीतर उत्पादन को योजनाबद्ध किया जा सकता है बल्कि समाज के स्तर पर भी उत्पादन व वितरण की एक समग्र योजना बनायी जा सकती है और उसपर अमल किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में ही शहरीकरण को नियोजित किया जा सकता है। सामाजिक उत्पादन की प्रणाली को नज़रअन्दाज़ करके पर्यावरण विनाश की समस्या के समाधान की दिशा में एक क़दम भी नहीं बढ़ाया जा सकता है।

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(नवीं किश्त)

● सनी

पिछली किश्त में हमने इण्टरनेशनल की स्थापना और उसके जीवनकाल के दौरान हुए संघर्षों में मार्क्स-एंगेल्स की भूमिका पर चर्चा की थी। इण्टरनेशनल के बनने और उसमें सही विचारधारा के अधिपत्य के लिए मार्क्स-एंगेल्स ने ब्रिटिश सुधारवादियों, लासालपन्थियों, प्रूधोंवादियों तथा बाकुनिनपन्थियों से तीखा संघर्ष चलाया और मज़दूर आन्दोलन में सही विचारधारा व कार्यदिशा को स्थापित किया। इण्टरनेशनल के औपचारिक तौर पर समाप्त होने के बाद भी मार्क्स-एंगेल्स अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के परामर्शदाता बने रहे। सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति के सन्दर्भ में बात करें तो यह दौर प्राथमिक तौर पर मज़दूर वर्ग की पार्टियों के गठन का दौर था। निश्चित ही ये पार्टियाँ लेनिनवादी पार्टियाँ नहीं थीं, परन्तु लेनिनवादी पार्टी की वे पूर्वज पार्टियाँ थीं जिनके व्यवहार, कार्यक्रम तथा वैचारिक अवस्थिति से बोल्शेविक पार्टी के गठन हेतु ज़रूरी सबक हासिल हुए, नकारात्मक भी और सकारात्मक भी। 1870 के दशक से ही पश्चिमी यूरोप में मज़दूर पार्टियाँ बननी शुरू हो गयी थीं। इस दौर में मार्क्स-एंगेल्स के नेतृत्व की महती भूमिका रही। यह लेनिनवादी पार्टी के गठन से पहले का वह दौर है जिसने पार्टी अवधारणा हेतु ज़रूरी व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक शिक्षाएँ दीं। हम कम्युनिस्ट लीग और इण्टरनेशनल के दौर में लेनिनवादी पार्टी के पूर्वाधार के तौर पर मार्क्स-एंगेल्स की शिक्षाओं पर बात कर चुके हैं। लेनिनवादी पार्टी के सिद्धान्तकार लेनिन ने सबसे अधिक उपरोक्त दौर में बनी पार्टियों के स्वरुप तथा वैचारिक व सांगठनिक बहसों से सीखा। लेनिन लिखते हैं:

> "संसार के सभी देशों में मज़दूर आन्दोलन के पहले से कहीं अधिक विकास के युग के लिए, यानी उसके कार्यक्षेत्र के बढ़ने के युग के लिए, अलग-अलग राष्ट्रीय राज्यों के आधार पर सर्वजनीन समाजवादी मज़दूर पार्टियों की स्थापना के युग के लिए स्थान बनाकर पहले इण्टरनेशनल ने अपनी ऐतिहासिक भूमिका समाप्त कर दी।" (लेनिन, कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा, पृ. 9)

मार्क्स-एंगेल्स के नेतृत्व में ही कई देशों में मज़दूर पार्टियाँ अस्तित्व में आईं। हालाँकि अभी भी विजातीय प्रवृतियों का प्रभाव मौजूद था जिसके ख़िलाफ़ मार्क्स-एंगेल्स ने तीखा संघर्ष छेड़ा। मार्क्स-एंगेल्स ने यूरोप के मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व में मौजूद जर्मन मज़दूरों और उनकी पार्टी के गठन, उसकी विचारधारा, कार्यक्रम और उसके ढाँचे पर जो कहा वह मज़दूर वर्ग की पार्टी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण सबक हैं। जर्मनी में मज़दूर वर्ग की ऐसी मज़दूर पार्टी खड़ी हुयी जो मार्क्सवादी नज़रिये के क़रीब थी। इसका कारण जर्मनी के मज़दूर आन्दोलन में निहित हैं। विचारधारात्मक तौर पर सशक्त मज़दूर आन्दोलन के बीच से ही यह पार्टी निकली। जर्मन मज़दूर आन्दोलन के सशक्त होने के पीछे के कारण पर बात करते हुए एंगेल्स बताते हैं:

> "जर्मन मज़दूरों को बाक़ी यूरोप के मज़दूरों के मुक़ाबले दो महत्वपूर्ण लाभ हैं। पहला यह है कि वे यूरोप के सबसे अधिक सैद्धान्तिक लोगों में से हैं और उन्होंने सिद्धान्त की उस समझ को जीवित रखा है, जो जर्मनी के तथाकथित 'शिक्षित' वर्गों में लगभग एकदम मर चुकी है। संसार में अभी तक केवल एक वैज्ञानिक समाजवाद हुआ है, यानी जर्मन वैज्ञानिक समाजवाद, और वह अभी अस्तित्व में न आता, यदि उसके पहले जर्मन दर्शन, विशेषकर हेगेल का दर्शन न पैदा हो चुका होता। मज़दूरों में यदि सिद्धान्त की समझ न होती, तो यह वैज्ञानिक समाजवाद उनकी नस-नस में उस तरह कभी न समा पाता, जिस तरह वह आज समा गया है। यह कितना बेहिसाब लाभ है, इसका अन्दाज़ा एक तरफ़ तो हर प्रकार के सिद्धान्तों के प्रति उदासीनता से लगाया जा सकता है, जो इस बात का मुख्य कारण है कि अंग्रेज़ मज़दूरों का आन्दोलन अलग-अलग यूनियनों के शानदार संगठन के बावजूद इतने धीरे-धीरे रेंगता हुआ बढ़ रहा है। दूसरी तरफ़, इसका अन्दाज़ा उस भ्रम और उन गड़बड़ियों से भी लगाया जा सकता है, जिन्हें प्रूदोंवाद ने अपने मूल रूप में फ़्रांसीसी और बेल्जियन मज़दूरों के बीच तथा बाकुनिन द्वारा विकृत रूप में स्पेन और इटली के मज़दूरों के बीच फैला दिया था।
>
> जर्मन लोग मज़दूरों के आन्दोलन में सबसे आख़िर में शामिल हुए हैं। जिस प्रकार जर्मनी का सैद्धान्तिक समाजवाद यह कभी नहीं भूल सकता कि यह सेंट-सीमों, फ़ूरिये तथा ओवेन के कन्धों पर टिका हुआ है--उन तीन विचारकों के कन्धों पर, जिन्हें उनकी शिक्षाओं के तमाम ऊटपटांग विचारों और समस्त यूटोपियनवाद के बावजूद तमाम युगों के महान विचारकों में गिना जायेगा, जिनकी विलक्षण प्रतिभा ने ऐसी कितनी ही बातों को पहले से ही देख लिया था, जिनके औचित्य को अब हम वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित कर रहे हैं -- उसी प्रकार जर्मन मज़दूरों के व्यावहारिक आन्दोलन को भी यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वह अंग्रेज़ और फ़्रांसीसी मज़दूरों के आन्दोलनों के कन्धों पर बढ़ा और विकसित हुआ है, कि इन आन्दोलनों ने बड़ी क़ीमत देकर जो अनुभव प्राप्त किया था, जर्मन आन्दोलन ने उससे केवल लाभ उठाया है, कि वह अब उनकी ग़लतियों से बच सका है, जिनसे बचना उस समय प्रायः असम्भव ही था। अंग्रेज ट्रेड-यूनियनों तथा फ़्रांसीसी मज़दूरों के पृष्ठभूमि हमारे पास न होती, ख़ास तौर पर यदि जरा सोचिये कि यदि राजनीतिक संघर्षों की हमारे पास वह महान प्रेरणा न होती, जो हमें पेरिस कम्यून से प्राप्त हुई है, तो आज हम कहाँ होते ?" (एंगेल्स, 'प्राक्कथन', *जर्मनी में किसान युद्ध*)

जर्मन मज़दूर आन्दोलन यूरोप के मज़दूर आन्दोलन के हिरावल की भूमिका निभा रहा था। लेकिन उस समय यह केवल मार्क्स के विचारों से ही प्रभावित नहीं था। 1860 के दशक में जर्मनी की दो मज़दूर पार्टियाँ अस्तित्व में आ चुकी थीं; लासाल के नेतृत्व में बनी 'जनरल जर्मन वर्कर्स एसोसिएशन' नामक पार्टी, जो लासाल के ग़लत विचारों के इर्द-गिर्द बनी थी तथा लीब्कनेख़्त, बेबेल व ब्राके के नेतृत्व में बनी समाजवादी मज़दूर पार्टी (आइज़ेनाख़ पार्टी) जो मार्क्स-एंगेल्स के विचारों के क़रीब पड़ती थी। इन दोनों पार्टियों ने 1875 में गोथा में सम्मेलन कर एकता कर ली। मार्क्स और एंगेल्स ने आइज़ेनाख़ पार्टी के नेता लीब्कनेख़्त और बेबेल को इस एकता के विरुद्ध में पहले भी आगाह किया था। मार्क्स-एंगेल्स ने पहले ही कहा था कि केवल कार्रवाई हेतु एकता तो की जा सकती थी परन्तु कार्यक्रम व सिद्धान्तों के प्रश्न पर एकता करना अवसरवाद होगा। लेनिन के शब्दों में:

> "मार्क्स ने पार्टी के नेताओं को लिखा था कि यदि आप लोग संयुक्त होना ही चाहते हैं, तो आन्दोलन के व्यावहारिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समझौते कीजिए, पर उसूलों के सवाल पर कभी कोई सौदेबाज़ी मत होने दीजिए, सिद्धान्तों के सवाल पर कोई "रियायत" मत कीजिए।"

परन्तु यही हुआ और 1875 में गोथा में दोनों पार्टियाँ साथ आ गयीं और जर्मनी की सामाजिक-जनवादी पार्टी के बैनर तले एकजुट हुईं। पारित कार्यक्रम में लासाल के विचारों को छूट दी गई थी जबकि 1869 के आइज़ेनाख़ पार्टी के कार्यक्रम की भी ग़लतियों की ओर मार्क्स-एंगेल्स ने इशारा किया था। एंगेल्स ने बेबेल को इस एकता के उपरान्त लिखा था:

> "हमारी पार्टी ने लासालवादियों के सामने मेल के या कम से कम सहयोग के प्रस्ताव इतनी बार रखे और हाज़ेनक्लेवेरो, हैस्सेलमैनों तथा ट्योल्केओं द्वारा वह इतनी बार तिरस्कारपूर्वक दुत्कारी गयी है कि कोई बच्चा भी यही निष्कर्ष निकालता कि यदि ये सज्जन अब स्वयं आगे बढ़कर मेल का प्रस्ताव कर रहे हैं तो इनकी हालत बहुत तंग होनी चाहिए। लेकिन इन लोगों के सुविदित चरित्र को ध्यान में रखते हुए हमारा यह कर्तव्य है कि हम हर सम्भव गारण्टी प्राप्त करने के लिए इनकी इस तंग हालत का उपयोग करे ताकि ये हमारी पार्टी के बल पर मज़दूरों में अपनी कमज़ोर स्थिति को फिर से मज़बूत न बना पाये। उनके साथ अत्यन्त उपेक्षा और अविश्वास के साथ पेश आना चाहिए था और मेल को इस बात पर निर्भर कर देना चाहिए था कि किस हद तक वे अपने सम्प्रदायवादी नारों और अपनी "राजकीय सहायता" को छोड़ने और *1869* के आइज़ेनाख़ कार्यक्रम या वर्तमान स्थिति के अनुकूल उसके संशोधित रूप को तत्वतः स्वीकार करने के लिए तैयार है। हमारी पार्टी को सैद्धान्तिक क्षेत्र में और इसलिए कार्यक्रम के लिए निर्णायक चीज़ों में लासालवादियों से बिल्कुल कुछ नहीं सीखना है, लेकिन लासालवादियों को अवश्य हमारी पार्टी से कुछ सीखना है। एकता की पहली शर्त यह होनी चाहिए थी कि वे सम्प्रदायवादी लासालवादी न रहें और अतः सर्वोपरि शर्त यह है कि राजकीय सहायता की रामबाण औषधि यदि पूर्णत: तजी नहीं जाती तो किसी भी सूरत में वह उनके द्वारा अन्य कई सम्भव उपायों में से एक गौण संक्रमणकालीन उपाय के रूप में स्वीकारी जानी चाहिए। कार्यक्रम का प्रस्ताव सिद्ध करता है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से हमारे लोग लासालवादी नेताओं से सैकड़ों गुना श्रेष्ठ हैं पर राजनीतिक चालाकी में वे उनसे इतने ही नीचे भी हैं; खरे (आईसनाख़वादियों को खरा कहा जाता था) लोग एक बार फिर खोटे लोगों द्वारा निर्ममतापूर्वक छले गये हैं।" (एंगेल्स, बेबेल को एंगेल्स का पत्र, मार्च 18-28, 1875)

मार्क्स-एंगेल्स ने गोथा कार्यक्रम की सुसंगत आलोचना की और यह आलोचना ऐतिहासिक भौतिकवाद का एक ज़रूरी दस्तावेज़ बन गया। यह दस्तावेज़ कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम का कम्युनिस्ट घोषणापत्र के बाद सबसे प्रमुख दस्तावेज़ था। मार्क्स ने इसमें पूँजीवाद से कम्युनिज़्म के बीच समाजवादी संक्रमणकाल की व्याख्या की तथा यह बताया कि किस प्रकार राज्य का विलोपीकरण होता है, हालाँकि मार्क्स के ये तमाम प्रेक्षण लासालपन्थ की तीखी आलोचना के आवेग में कहीं छिप-से जाते हैं। लेनिन बताते हैं कि :

> "इस अनूठी कृति के खण्डनात्मक भाग ने, जिसमें लासालपथ की आलोचना है- एक तरह से उसके मण्डनात्मक भाग को यानी कम्युनिज़्म के विकास और राज्य के विलोप के सम्बन्ध के विश्लेषण को दबा दिया है।" *(लेनिन, राज्य और क्रान्ति,* मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन कृत *सर्वहारा अधिनायकत्व लेख संग्रह, पृ. 158-159)*

लेनिन ने मार्क्स के इस दस्तावेज़ की थीसिस को सर्वहारा राज्य और समाजवादी क्रान्ति के समूचे सिद्धान्त की समाहार-मूलक थीसिस कहा। लेनिन ने इसके "मण्डनात्मक भाग" पर चर्चा करते हुए लिखा:

> "आधुनिक पूँजीवाद पर विकास के सिद्धान्त को उसके सबसे सुसंगत, पूर्ण, विचारनिष्ठ और अर्थपूर्ण रूप से लागू करना ही मार्क्स का पूरा सिद्धान्त है। स्वभावतः मार्क्स के सामने इस सिद्धान्त को पूँजीवाद के आनेवाले पतन और भावी कम्युनिज़्म के भावी विकास, दोनों पर लागू करने का सवाल था।
>
> "भावी कम्युनिज़्म के भावी विकास के प्रश्न की विवेचना किन तथ्यों के आधार पर की जा सकती है?
>
> इस तथ्य के आधार पर कि उसका जन्म पूँजीवाद से होता है, कि ऐतिहासिक दृष्टि से वह पूँजीवाद के भीतर से विकसित होता है, कि उसकी उत्पत्ति उस सामाजिक शक्ति की क्रिया के परिणामस्वरूप होती है, जिसको पूँजीवाद ने पैदा किया है। मार्क्स ने किसी प्रकार के यूटोपिया की तस्वीर खींचने की या एक अज्ञेय वस्तु के सम्बन्ध में व्यर्थ की हवाई उड़ानें भरने की ज़रा भी कोशिश नहीं की। कम्युनिज़्म के प्रश्न को मार्क्स बिलकुल उसी ढंग से पेश करते हैं, जैसे कोई प्रकृतिविज्ञानी, समझ लीजिए, किसी नयी जैव उपजाति के विकास पर विचार करेगा, यदि वह जानता हो कि वह इस प्रकार पैदा हुई और इस निश्चित दिशा में परिवर्तित हो रही है।" *(लेनिन, वही, पृ. 160)*

"खण्डनात्मक भाग" में मार्क्स ने गोथा कार्यक्रम में लासाल की टुटपुँजिया अवसरवादी लाइन को बेनक़ाब किया। गोथा कार्यक्रम में मार्क्स ने लासाल के सम्पत्ति पर काल्पनिक समाजवादी विचारों, मज़दूर वर्ग को एकमात्र क्रान्तिकारी वर्ग बताने व मेहनतकश जनसमुदायों के अन्य वर्गों को "प्रतिक्रियावादी समूह" बताने वाम-हिरावलपन्थी सोच, "राजकीय सहायता" की ग़ैर-सर्वहारा अवधारणा, उजरत के लौह-नियम के ग़लत सिद्धान्त, सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद के निषेध और राज्य के प्रश्न ग़लत समझदारियों

(पेज 13 पर जारी)

कानपुर देहात में मुनाफ़े के लिए आपराधिक लापरवाही की भेंट चढ़े 6 मज़दूर!
फ़ैक्ट्रियों में लगने वाली आग कोई हादसा नहीं बल्कि पूँजीपतियों की लूट की हवस का नतीजा है

उत्तर प्रदेश के कानपुर देहात के औद्योगिक क्षेत्र रनियां में गद्दा फ़ैक्ट्री में भीषण आग लगने से छह मज़दूरों की दर्दनाक मौत हो गयी। शनिवार सुबह 6 बजे कारख़ाने की एलपीजी यूनिट में गैस रिसाव हो गया। इसके बाद तेज़ धमाका हुआ और आग लग गयी। कारख़ाने में न तो अग्निशमन यंत्र था और न ही अलार्म। ऊपर से मानकों को धता बताकर बनाया गया टिनशेड और दीवार आग की वजह से गिर गयी जिसके नीचे कई मज़दूर दब गये। इस वक़्त कारख़ाने में काम कर रहे 11 मज़दूरों में से 10 अन्दर ही फँस गये। 3 मज़दूर कारख़ाने में ज़िन्दा जल गये और तीन ने इलाज़ के दौरान दम तोड़ दिया।

कारख़ानों में लगने वाली आग की यह कोई पहली घटना नहीं है। मुनाफ़े की अन्धी हवस में सुरक्षा मानकों को ताक पर रखकर किये जाने वाले उत्पादन से औद्योगिक दुर्घटनाओं की बारम्बारता में तेजी से वृद्धि हुई है। इस घटना से ही समझा जा सकता है कि इन घटनाओं के पीछे शासन, प्रशासन और पूँजीपतियों का गठजोड़ काम करता है जो मुनाफ़े के लिए आम मेहनतकश जनता की ज़िन्दगियों का भी सौदा करते रहते हैं। प्रारम्भिक जाँच के मुताबिक़ यह फ़ोम कारख़ाना बिना फ़ायर एनओसी के चल रहा था और वहाँ सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं थे। आग बुझाने के लिए जो वाटर टैंक था, उसमें पानी भी बहुत कम था। दमकल को आसपास की फ़ैक्ट्रियों से पानी लेना पड़ा जिसकी वजह से आग पर काबू पाने में काफ़ी वक़्त लगा। दरअसल, इन्वेस्टर्स सम्मिट में एमओयू पर हस्ताक्षर के बाद डेढ़ साल पहले मानकों को दरकिनार कर फ़ैक्ट्री में उत्पादन शुरू कर दिया गया। फ़ैक्ट्री के निर्माण के दौरान प्रोविज़नल (अस्थायी) प्रमाणपत्र तक नहीं लिया गया। ऐसे में सवाल उठता है कि बिना एनओसी के इस कारख़ाने का संचालन किसकी अनुमति से हो रहा था। क्या कानपुर देहात के प्रशासन और उत्तर प्रदेश की योगी सरकार को इसकी भनक नहीं थी?

दरअसल सच्चाई यह है कि ऐसी घटनाएँ आम तौर पर मालिकों के साथ शासन और प्रशासन की मिलीभगत का परिणाम होती हैं जब चुनावी चन्दे और रिश्वत के बदले पूँजीपतियों को मेहनतकशों की ज़िन्दगी से खेलने का पूरा हक़ दे दिया जाता है। अब इस घटना के बाद भाजपा और दूसरे पूँजीवादी दलों के नेता घड़ियाली आँसू बहाना शुरू कर चुके हैं। तू नंगा-तू नंगा का खेल शुरू हो चुका है। आने वाले दिनों में जाँच की नौटंकी होगी और अगले क़त्लेआम की तैयारी में यह पूरी मशीनरी लग जायेगी।

कारख़ानों में होने वाली यह कोई पहली घटना नहीं है और न ही आख़िरी होने वाली है। श्रम मंत्रालय की एक रिपोर्ट बताती है कि बीते पाँच वर्षों में 6500 मज़दूर फ़ैक्ट्री, खदानों, निर्माण कार्य में हुए हादसों में अपनी जान गँवा चुके हैं। इसमें से 80 प्रतिशत हादसे कारख़ानों में हुए। 2017-2018 कारख़ाने में होने वाली मौतों में 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। साल 2017 और 2020 के बीच, भारत के पंजीकृत कारख़ानों में दुर्घटनाओं के कारण हर दिन औसतन तीन मज़दूरों की मौत हुई और 11 घायल हुए। 2018 और 2020 के बीच कम से कम 3,331 मौतें दर्ज की गयी। आँकड़ों के मुताबिक़, फ़ैक्ट्री अधिनियम, 1948 की धारा 92 (अपराधों के लिए सामान्य दण्ड) और 96ए (ख़तरनाक प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दण्ड) के तहत 14,710 लोगों को दोषी ठहराया गया, लेकिन आँकड़ों से पता चलता है कि 2018 और 2020 के बीच सिर्फ़ 14 लोगों को फ़ैक्ट्री अधिनियम, 1948 के तहत अपराधों के लिए सज़ा दी गयी। यह आँकड़े सिर्फ़ पंजीकृत फ़ैक्ट्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि पूरे देश में लगभग 90 फ़ीसदी श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े हैं और अनौपचारिक क्षेत्र में होने वाले हादसों के बारे में कोई पुख़्ता आँकड़े नहीं हैं।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने माँग की है कि –

1. बिना एनओसी के संचालित इस कारख़ाने के मालिक और अन्य ज़िम्मेदार लोगों को तत्काल गिरफ़्तार किया जाये। कारख़ाने कों सील किया जाये और इसके ख़िलाफ़ सख़्त क़ानूनी कार्रवाई की जाये। आपराधिक लाहरवाही के लिए ज़िम्मेदार प्रशासन और शासन के लोगों को चिह्नित कर गिरफ़्तार किया जाये।

2. देश भर में सुरक्षा मानकों को ताक पर रखकर चल रहे कारख़ानों कों चिन्हित कर उन पर कठोर कानूनी कार्रवाई की जाये।

3. इस घटना में जान गँवाने वाले और घायल मज़दूरों को क़ानूनी तौर पर उचित मुआवज़ा दिया जाये।

● कार्यालय संवाददाता

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(पेज 12 से आगे)

की मार्क्स ने आलोचना रखी। मार्क्स ने लासाल के बिस्मार्क के साथ समझौतों को भी आड़े हाथों लिया। मार्क्स की 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' को पार्टी ने पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। इस समझौते के चलते पार्टी में कई ढुलमुल तत्व भी शामिल हुए। ड्यूहरिंग के अलावा ह्योखवर्ग, बर्नस्टीन भी पार्टी में घुस गए थे। इस परिस्थिति पर टिप्पणी करते हुए मार्क्स ने लिखा :

> "जर्मनी में हमारी पार्टी मे दुर्गन्ध व्याप्त है। इतनी जनसाधारण में नहीं, जितनी कि नेताओं (उच्च वर्ग और "मज़दूरों") में। लासालवादियों के साथ समझौते ने अन्य सन्दिग्ध तत्वों के साथ--बर्लिन में (मोस्ट के ज़रिये) ड्यूहरिंग और उनके "प्रशंसकों" के साथ और इनके अलावा अधकचरे विद्यार्थियों और अतिबुद्धिमान "दर्शन के डाक्टरों" के साथ जो समाजवाद को "सर्वोच्च भाववादी" दिशा देना चाहते हैं, यानी इसके भौतिकवादी आधार (जिसकी अपेक्षा है कि प्रयोग किये जाने से पहले उसका गम्भीर वस्तुपरक अध्ययन करना चाहिए) की जगह न्याय, स्वतन्त्रता समानता और बन्धुत्व की देवियों के साथ आधुनिक पुराणविद्या को कायम करना चाहते हैं--समझौते के लिए विवश कर दिया है। ज़ुकुंफ्ट (Zukunft) पत्रिका के प्रकाशक डा० ह्योखवर्ग इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि है। और मेरे ख़याल से वह "उदात्ततम इरादों" से पार्टी में "घुस आये हैं" लेकिन मैं "इरादों" की ज़रा भी परवाह नहीं करता। ज़ुकुंफ्ट (Zukunft) के उनके कार्यक्रम से अधिक घटिया और अधिक 'तुच्छ आडम्बर" से पूर्ण कोई चीज़ शायद ही प्रकाश में आयी हो।
>
> "प्रतीत होता है कि स्वयं मज़दूर जब काम छोड़ देते हैं और मोस्ट और उनकी मण्डली की तरह पेशेवर साहित्यकार बन जाते हैं, तो हमेशा "सैद्धान्तिक" शरारत शुरू करते हैं और हमेशा तथाकथित "विद्वान" वर्ग के बेवकूफ़ों में शामिल होने को तत्पर रहते हैं। दशकों से हम एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर जर्मन मज़दूरों के दिमागों से कल्पनावादी समाजवाद, भावी समाज के बारे में काल्पनिक तस्वीरों को हटा रहे हैं और इससे उनकी मुक्ति ने ही उन्हें सैद्धान्तिक रूप से (इसलिए व्यावहारिक रूप से भी फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ मज़दूरों से श्रेष्ठ बना दिया है)। लेकिन कल्पनावादी समाजवाद न केवल महान फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ कल्पनावादियों की तुलना में, बल्किवाइटलिंग की तुलना में भी अधिक निरर्थक रूप में पुनः व्याप्त हो गया है। स्वभावतया कल्पनावादी सिद्धान्त, जो भौतिकवादी आलोचनात्मक समाजवाद से पहले वाइटलिंग में बीज रूप में विद्यमान था अब विलम्बित रूप से प्रकट होते हुए केवल भद्दा घिसापिटा और मूलतः प्रतिक्रियावादी ही हो सकता है।" (मार्क्स, ज़ोर्गे को मार्क्स, 19 अक्टूबर, 1877)

जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी के इतिहास में दूसरा महत्वपूर्ण संघर्ष मार्क्स द्वारा इंगित "भद्दा घिसापिटा और मूलतः प्रतिक्रियावादी" कल्पनावादी सिद्धान्त के एक प्रणेता ड्यूहरिंग के ख़िलाफ़ चला। ड्यूहरिंग ने अपने इर्द-गिर्द एक मण्डली एकत्रित कर ली थी जो उसके अनर्गल सार संग्रहवादी विचारों को समाजवादी विचारों के रूप में प्रचारित कर रही थी। ड्यूहरिंग के विचारों के इर्दगिर्द बनाने वाले गुट से नवगठित पार्टी की एकता को ख़तरा था और उन्नत मज़दूरों तथा छात्रों के बीच ड्यूरिंग के विचार पहुँच तरह थे। इन विचारों का खण्डन एंगेल्स ने अपनी कृति 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' में किया और साथ ही इस पुस्तक से मार्क्सवाद को व्यवस्थित रूप में प्रचारित किया।

तीसरा महत्वपूर्ण संघर्ष तब शुरू हुआ जब *जारबूख़* अखबार ज़्यूरिख़ से ह्योख़बर्ग, बर्नस्टीन और श्राम्म ने निकालना शुरू किया। ये तीनों मार्क्सवाद और पेरिस कम्यून के खिलाफ़ बात रख रहे थे और बिस्मार्क के साथ समझौते का आह्वान कर रहे थे। तीनों ने वर्ग सहयोग की लाइन पेश की और मज़दूर वर्ग को क्रान्तिकारी वर्ग मानने से भी इन्कार किया। इसके ख़िलाफ़ मार्क्स-एंगेल्स ने बेबेल, लीब्कनेख़्त और ब्राके को 'गश्ती चिट्ठी' लिखी जो कि राजनीतिक अवसरवाद के ख़िलाफ़ लिखे सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों में से एक है। मार्क्स-एंगेल्स तीनों "विद्वानों" को टुटपुँजिया बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि घोषित करते हैं और उनके समाजवादी चोगे में बुर्जुआ राजनीति का पर्दाफाश करते हैं। आज भी संशोधनवाद के पंककुण्ड में डूबे अवसरवादियों के मुँह पर यह चिट्ठी तमाचे के समान पड़ती है।

पार्टी के सन्दर्भ में चौथा संघर्ष ग़ैर-क़ानूनी कामों को लेकर चला। बिस्मार्क पेरिस कम्यून से आगाह होकर लम्बे समय से कम्युनिस्टों के खिलाफ़ कार्रवाई करने के लिए कदम उठा रहा था। बिस्मार्क-पूर्व जर्मनी के युंकरों का प्रतिनिधि था जिसने पूँजीवादी विकास के 'प्रशियन पथ' को प्रशिया में लागू किया, यानी ग़ैर-क्रान्तिकारी रास्ते से ऊपर से, और प्रतिक्रिया की शक्तियों के ज़रिये पूँजीवाद का विकास। वह राजनीतिक तौर पर औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग और युंकर वर्ग की नीतियों को लागू कर रहा था। बिस्मार्क ने 1877 में "समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून" पारित किया। इसके ख़िलाफ़ खुला संघर्ष करने की जगह और गैर-क़ानूनी सांगठनिक ढाँचा बनाकर अपने कामों को जारी रखने की जगह पार्टी का एक हिस्सा संगठन को केवल क़ानूनी स्तर पर चलाने और बिस्मार्क की नीतियों के समर्थन करने तक पहुँच रहा था। मार्क्स-एंगेल्स ने इन विचारों की भी धज्जियाँ उड़ा दीं। लेनिन इस बाबत बताते हैं:

> "राजनीतिक गतिरोध और बुर्जुआ वैधानिकता के बोलबाले के दौर में संघर्ष के क़ानूनी साधनों के उपयोग की पूरी तरह कद्र करते हुए मार्क्स ने 1877-1878 में "समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून" पास होने के बाद मोस्ट की "क्रान्तिकारी लफ़्फ़ाज़ी" की तीक्ष्ण निन्दा की। लेकिन उन्होंने उस आधिकाधिक सामाजिक-जनवादी पार्टी पर अस्थायी रूप से हावी तत्कालीन अवसरवाद पर भी उतना ही तीव्र हमला किया, जिसने समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून के जवाब में ग़ैर-क़ानूनी संघर्ष की ओर कदम बढ़ाने का संकल्प, दृढ़ता, क्रान्तिकारिता, तत्परता तुरन्त प्रदर्शित नहीं की।" (लेनिन, *कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा*, पेज 33)

इन चार महत्वपूर्ण संघर्षों ने पार्टी में विचारधारात्मक, कार्यक्रम-सम्बन्धी तथा रणनीतिक मसलों में बेहद ज़रूरी सबक दिए। फ़्रांस में मार्क्स एंगेल्स के नेतृत्व में गेद और लाफ़ार्ग ने सही दिशा में फ्रांसीसी मज़दूर पार्टी को संगठित करने का प्रयास किया, हालाँकि मार्क्स गेद की विच्युतियों की भी आलोचना रखते रहे थे। गेदवादियों और सम्भावनावादियों के बीच संघर्ष से ही फ़्रांसीसी मज़दूर पार्टी स्थापित हुयी थी।

मार्क्स-एंगेल्स की स्पेन, इंग्लैण्ड से लेकर यूरोप के कई देशों से लेकर अमरीका तक में मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक पार्टी गठित करने में अहम भूमिका रही। रूस में भी मार्क्स-एंगेल्स कई क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में थे। उन्होंने रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन और रूस में मज़दूर पार्टी के गठन के लिए भी ज़रूरी सुझाव दिये थे। हम इन सबकों अगली किश्त में देखेंगे जब हम रूस में मज़दूर पार्टी के गठन की पूर्वपीठिका पर बात करेंगे।

प्रथम इण्टरनेशनल के बाद का मार्क्स-एंगेल्स के जीवनकाल का दौर मज़दूर पार्टियों के गठन का और मार्क्स-एंगेल्स द्वारा छेड़े दो लाइनों के संघर्ष का था जिसमें मार्क्स-एंगेल्स ने विचारधारात्मक तौर पर किसी भी ग़लत प्रवृति के सर उठाते ही उसके ख़िलाफ़ संघर्ष छेड़ दिया और यह उन्होंने हर-हमेशा अलग-थलग पड़ जाने का ख़तरा मोल लेते हुए भी किया।

(अगले अंक में जारी)

मज़दूर जीवन पर एक प्रसिद्ध कहानी

बदबू

• शेखर जोशी

एक साथी ने उसकी परेशानी का कारण भाँप लिया था, 'ऐसे नहीं उतरेगा मास्टर। आओ, तेल में धो लो, कहकर उस साथी ने उसे अपने साथ चले आने को संकेत किया। एक बड़े टब में घटिया किस्म का कैरोसीन तेल रखा हुआ था। दोनों ने अपने हाथों को कुहनी-कुहनी भर उसमें डुबाकर मला। अब हथेलियों ओर बाँहों में लिपटी सारी चिकनी कालिख धुल गई थी, परंतु उसे लगा जैसे दोनों बाँहों में अदृश्य चीटिंयाँ रेंग रही हों। कैरोसीन तेल की गंध के कारण उसका जी मिचला उठा। इस खीझ और गंध से मुक्ति पाने के लिए वह नल की ओर चल दिया।

अंतिम साइरन बज चुका था। पानी के प्रत्येक नल पर बीसियों कामगार घिरे हुए थे। कुछ लोग हाथों में साबुन मल रहे थे और शेष मल चुकने पर हाथों को पानी से धोने के लिए बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देखकर सबकी अजनबी निगाहें उसकी ओर लग गई। एक-दो मजदूरों ने सौजन्य प्रदर्शन के लिए अपनी बारी आने से पहले ही उसे पानी लेने को बढावा दिया। किंचित संकोच के बाद उसने आगे बढ़कर पानी ले लिया। यह संकोच स्वाभाविक था। अपनी बारी आने से पहले पानी लेने का प्रयत्न करने वालों को उत्साहित करने की इच्छा किसी के मन में न थी, यह वह दो क्षण पहले विभिन्न स्वरों में सुन चुका था।

परंतु उसे पानी लेते देखकर किसी ने आपत्ति नहीं की। एक बार हाथ अच्छी तरह धो लेने पर उसने उन्हें नाक तक ले जाकर सूंघा। कैरोसीन की गंध अभी छूटी नहीं थी। दुबारा साबुन से धो लेने पर भी उसे वैसी ही गंध का आभास हुआ, फिर एक बार और साबुन जेब से निकाल कर उसने हाथों में मलना शुरू कर दिया।

घासी रस ले-लेकर एक किस्सा सुनाने लगा और सारा समूह अपनी व्यस्तता भूलकर उसकी बात सुनता रहा

एक गाँव के मेहतर की लौंडिया थी। उसकी शादी हुई शहर में जैसा तुम जानो, गाँव के मेहतरों को तो कभी गंदा उठाने की जरूरत ही नहीं पड़ती। नई-नई शहर में गई तो दिन-रात नाक चढ़ा कर अपने खसम से कहा करे-बदबू आती है, बदबू आती है। मालिक क्या करता! उसकी खातिर पेशा तो छोड़ नहीं सकता था। धीरे-धीरे लौंडिया भी काम पर जाने लगी। साल-छः महीने के बाद मेहतर की सासू शहर देखने आई। रास्ते में ही हाथ में झाड़ू बाल्टी लिये बेटी मिल गई। माँ पहले तो लाड से बेटी से गले मिली और फिर नाक पर आँचल रख लिया।

बेटी ने पूछा, 'ऐ अम्मा, नाक-मुँह क्यों बंद कर लिया?

माँ बोली, ' बेटी बदबू आती है। बेटी अचम्भे से बोली, कैसी बदबू ? मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम देती।'

नल के इर्द-गिर्द घिरे हुए सभी कामगारों के थके चेहरों पर भी उसकी बात सुनकर हँसी खिल गई। घासी ने ही फिर बात को स्पष्ट किया, 'ये भाई भी अभी हाथ नाक पै ले जा-जा के सूँघ रहे थे तभी किस्सा याद आया। पहले-पहल हम भी ऐसे ही सूँघा करते थे। पर अब तो ससुरा पता ही नहीं लगता। कितनी बार तो साबुन नहीं मिलता, ऐसे ही पोंछ-पांछकर रोटी खाने बैठ जाते है।

संकेत उसी की ओर था। परिहास के उत्तर में गम्भीर हो जाना उसे उचित न लगा। सभी की हँसी में उसने अपना योग भी दे दिया। परन्तु घासी की बात पर उसे आश्चर्य हो रहा था। तेल की ऐसी तीखी दुर्गंध को साबुन से छुटाये बिना आदमी कैसे भला चैन से रह सकेगा। इसका उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। कपडे बदल कर वह लाइन में जा लगा। इकहरी पंक्ति के प्रारम्भ में हेड फोरमैन के साथ एक गोरखा सिपाही खड़ा था। प्रत्येक मजदूर अपनी रोटी का खाली डिब्बा खोलकर उसे दिखाता और फिर दोनों हाथ ऊँचे उठाकर तलाशी देने की मुद्रा में खड़ा हो जाता। गोरखा सर्चर मजदूर की छाती, कमर ओर जेबों को टटोलकर आगे बढ़ जाने का संकेत कर देता।

जल्दी घर पहुँचने की इच्छा रखने वालों को पंक्ति की धीमी गति के कारण झुंझलाहट हो रही थी। इसी झुंझलाहट में कभी-कभी लोग पंक्ति में अपने से आगे व्यक्ति को ठेल देते। बीच-बीच में मोटा फोरमैन उनकी इस जल्दबाजी को कोई भद्दी, अश्लील व्याख्या कर हँस देता था। उसे फोरमैन का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। परंतु ने उसने सुना, पंक्ति में से ही कोई कह रहा था, फोरमैन जी बडे रंगीले आदमी हैं। सम्मति प्रकट करने वाला एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति था जो अब भी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से फोरमैन की ओर देख रहा था कि जैसे फोरमैन ने यह मजाक करके उन पर बड़ी कपा कर दी हो।

उसकी तलाशी देने की बारी आ गई थी। ठिगने सिपाही ने अपनी एड़ी उठाकर बड़ी कठिनाई से उसकी तलाशी ली। सिपाही के इस आयास को देखकर उसका मन हँसने को हुआ परंतु मन पर अवसाद की धुध इतनी गहरी छा गई थी कि वह हँस न सका। बड़े फाटक से पहले फिर इकहरी पंक्ति बन गई थी। परंतु इस बार पंक्ति के परले सिरे पर खड़ा हुआ सिपाही तलाशी नहीं ले रहा था, वरन यह देखने के लिए खड़ा था कि कोई भी व्यक्ति कठघरे में आड़ी गिरी हुई लकड़ी को लाँघे बिना न चला जाय। अन्य सभी मजदूरों की भाँति वह भी आड़ी गिरी हुई लकड़ी को लाँघकर बाहर चला गया ।पीछे मुड़कर उसने फिर एक बार कटघरे की ओर देखा-लोग अब भी एक-एक कर कूदते हुए चले आ रहे थे। इस उछल-कूद का प्रयोजन वह नहीं समझ पाया। गेट से बाहर निकलकर उसने अनुभव किया जैसे वह बंद कोठरी से निकलकर खुली हवा में चला आया हो।

'क्या आफत बना रखी है।' अनायास ही उसके मुँह से निकल गया। – अनजाने में ही कहे गये ये शब्द साथ चलने वाले एक बुर्जुग के कानों तक पहुँच गये थे। उन्होंने धीरे-से अपनी राय प्रकट की, नये आये लगते हो? पहले-पहल ऐसा ही लगता है, धीरे-धीरे आदत सी पड़ जायेगी। आकाश की ओर अंगुली उठाकर उन्होने बात आगे बढ़ाई, उस नीली छतरी वाले का शुक्र करो कि यहाँ काम मिल गया। अच्छे-भले पढ़े-लिखे लोग धक्के खाते फिरते हैं; हमारे पड़ोस का एक लड़का……. बुजुर्ग अपने अनुभव की पोटली खोलकर बहुत कुछ बिखेरना चाहते थे, लेकिन उसका मन उनकी बातों में नहीं लगा, कनखियों से उसने उनकी ओर देखा। उस ऊपर वाले के अहसान का बोझ उठाते-उठाते ही जैसे उनकी कमर टेढी हो गई थी। वह चाल तेज कर आगे बढ़ गया।

रास्ते भर उसके दिमाग में वही सब-कुछ घूमता रहा जो वह दिन भर में देख-सुन चुका था। घासी और उस बुजुर्ग आदमी की बात याद आने पर वह सोचने लगा, क्या सच ही एक दिन वह भी सब-कुछ सहने का आदी हो जायेगा और नीली छतरी वाले के अहसानों का बोझ उसकी कमर को भी वैसे ही झुका देगा।

कारखाने में यह उसका पहला दिन था।

फिर एक-एक कर कई दिन बीत गए। परंतु घुटन और अवसाद की छाया दिनों दिन बोझिल होती गई।

शहर के बाहरी भाग में स्थित कारखाने की पहली सीटी पर प्रतिदिन कामगर लोग अपनी-अपनी गृहस्थी छोड़कर हाथों में रोटी-चबैना की पोटली या डिब्बा लटकाए, अपनी सुध-बुध खोकर तेज कदमों से कारखाने की ओर चले आते। दिन-भर कारखाने की खटर-पटर में मशीनों और औजारों से जूझकर थकी-लस्त देह वालों का यह काफिला साँझ के धुंधलके में अपने घरों की ओर चल देता। सर्दी, गर्मी, बरसात में कभी भी इस क्रम में कोई बाधा न पड़ती।।

कारखाने में अपने-अपने अड्डे पर काम करते हुए लोगों को हर रोज सुबह से शाम तक एक ही स्थान में, उन्ही चिर-परिचित मुद्राओं में देखकर उसे ऐसा लगता जैसे वह वर्षों से उन्हें उसी स्थान पर इसी रूप में देखता आ रहा हो। इस नीरस जिंदगी में कोई हलचल हो भी जाती तो उसका प्रभाव अधिक देर तक नहीं टिकता। तालाब में ठहरे हुए जल में कंकर फेंक देने पर जिस तरह क्षणिक हलचल होती है, वह प्रतिक्रिया वहां किसी नई घटना की होती। एक-दो दिन तक कारखाने में उस घटना की चर्चा रहती और फिर सब-कुछ पूर्ववत, शांत हो जाता साथी कामगरों के चेहरों पर असहनीय कष्टों और दैन्य की एक गहरी छाप थी, जो आपस की बातचीत या हँसी-मजाक के क्षणों में भी स्पष्ट झलक पड़ती थी। किसी प्रकार की नवीनता के प्रति सब के मन में एक विचिश शंका-भाव जड़ जमाये बैठा रहता। शायद यही कारण था कि अचानक ही एक छोटी-सी घटना के पश्चात उसके साथियों का व्यवहार उसके प्रति शंकालु हो उठा था।

यों घटना कुछ विशेष नहीं थी। उस दिन कारखाने में हर जगह बीड़ी का तूफान मचा हुआ था

'अबे हद हो गई यार! साला बुधुन सुलगती बीड़ी निगल गया।'

'हम वहीं खड़े थे भाई। साहब ने मुँह खुलवाया, मुँह में नहीं थी।

'कमाल है। साले को सरकस में जाना चाहिए।

चीफ़ साहब के आदेश पर सभी मजदूर एक स्थान पर एकत्रित हो गये थे। साहब के निकट ही बुद्धन सिर झुकाए खड़ा था। उपस्थित समूह को नसीहत देते हुए साहब ने बताया कि किस तरह उन्होंने पीछे से जाकर बुद्धन को कारखाने के अंदर बीड़ी पीते हुए पकड़ा और किस प्रकार चतुराई से उसने बीड़ी मुँह के अंदर ही डालकर गायब कर ली थी।

साहब बोले, कारखाने में इतनी कीमती चीजें पड़ी रहती हैं, किसी भी वक्त आग लग सकती है, एक आदमी की वजह से लाखों रुपये का नुकसान हो सकता है। हम ऐसी गलतियों पर कड़ी से कड़ी सजा दे सकते है।

बुद्धन को कड़ी चेतावनी के साथ एक रुपये का दण्ड देने की साहब ने घोषणा कर दी,तभी भीड़ में से किसी ने ऊँचे स्वर में कहा, साहब आग तो सभी की बीड़ी-सिगरेट से लग सकती है।

सैकड़ों विस्मित आँखें उस और उठ गई जिधर से आवाज आई थी। साहब कुछ कहें इससे पहले वही व्यक्ति फिर बोला, अफसर साहबान तो सारे कारखाने में मुँह में सिगरेट दाबे घूमते रहते हैं।

भीड़ में एक भयानक खामोशी छा गयी। इस मुहँजोर नये आदमी की उदण्डता देखकर साहब का मुँह तमतमा उठा। बड़ी कठिनाई से उनके मुँहसे निकला, ठीक है हम देखेगें और जाते-जाते उन्होंने तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखा जैसे उसकी मुखाकृति को अच्छी तरह पहचान लेने का प्रयत्न कर रहे हों।

चीफ साहब अपने चैम्बर की ओर चल दिये। भीड़ छँट गयी। हवा में चारों ओर कानाफूसी के विचित्र स्वर फैलने लगे। बुद्धन की ओर से हटकर लोगों का ध्यान अब उसकी ओर केन्द्रित हो गया था। उस दिन छुट्टी के बाद लौटते हुए दो-तीन नौजवान उसके साथ हो लिये। प्रत्यक्ष रूप में किसी ने भी बीड़ी वाली घटना को लेकर उसकी सराहना नहीं की, यद्यपि उनके व्यवहार और उनकी बातों से उसे लगा जैसे उन्हें यह अच्छा लगा हो और वे उसके अधिक निकट आना चाहते हों। कठघरे से निकल कर एक नौजवान बुदबुदाया, सालों का शक रहता है कि हम टांगों के साथ कुछ बाँधे ले जा रहे हैं, इसीलिए अब यह उछल-कूद का खेल कराने लगे हैं।'

'इनका बस चल तो ये गेट तक हमारी नागा साधुओं की सी बारात बनाकर भेजा करें', दूसरे ने उसकी बात का समर्थन किया।

'खीर खाये बामणी, फाँसी चढ़े शेख, नहीं देखा तो यहाँ आकर देख! छोटे साहब की गाड़ी के पिस्टन अंदर बदले गये है,

(पेज 15 पर जारी)

बदबू

(पेज 14 से आगे)

खुद मैने अपनी आखों से देखा,' पहले वाले व्यक्ति ने आवेश में आकर कहा। चुप , दूसरे नौजवान ने फुसफुसा कर उसे टोक दिया, टेलीफून जा रहा है। एक चुस्त चालाक आदमी उनके साथ-साथ चलने लगा था। तभी दोनों जवानों ने अपनी बीवियों के बारे में बातें शुरू कर दी।

इस घटना के बाद कुछ लोगों की दबी-दबी सहानुभूति पा जाने पर उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी अँधेरे, बंद तहखाने में प्रकाश की हल्की किरण का आसरा उसे मिल गया हो। पर सभी कामगरों की आँखों में सहानुभूति का यह भाव नहीं था। अनेक सहकर्मी इस घटना के पश्चात उसके प्रति रूखा व्यवहार करने लगे थे, और कुछ ऐसी भी आखें थीं जिनमें अचानक ही ईर्ष्या और उपेक्षा की भावना उभर आई थी। ऐसी ही एक जोड़ा आँखें एक दिन छुट्टी के बाद मार्ग में बहुत दूर तक उसका पीछा करती रही थी। उसे ऐसा लगा जैसे साथ में चलने वाला वह व्यक्ति उससे कुछ कहने के लिए अकुला रहा है। उन दोनों के साथ-साथ मजदूरों का झुंड हाथों में थैला या टिफिन का खाली डिब्बा लटकाए चला जा रहा था। एक नई उम्र के शरारती कारीगर बीरू ने अपने से आगे चलने वाले अधेड़ उम्र के लालमणि के कुर्ते का पिछला हिस्सा उठाकर सिगरेट का खाली पैकेट फँसा दिया था, पीछे चलने वाली भीड़ लालमणि के कुर्ते की पूँछनुमा बनावट और इस संबंध में उसकी अज्ञानता का आनंद ले रही थी। तभी किसी ने उसके साथ चलने वाले आदमी को लक्ष्य कर आवाज दी :

'नेताजी , जैराम जी की!'

साथ चलने वाले व्यक्ति की इर्ष्यालु दृष्टि का रहस्य उसकी समझ में आ गया। उत्तर में 'नेता' ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में। कहा, काहे शर्मिदा करते हो भाई, अब तो कारखाने में बड़े-बड़े नेता पैदा हो गये है। हम किस खेत के मुली है।'

जिस बात की उसे आशंका थी वही हुआ। शायद रात की सारी रिपोर्ट चीफ साहब के पास पहुँच गई थी। चपरासी ने साहब के कमरे का द्वार खोलकर उसे उनके सामने पहुंचा दिया, फिर द्वार पूर्ववत बंद हो गया। साहब ने अपने हाथों से स्टूल उठाकर बैठने के लिए आगे बढ़ा दिया और फिर नरमी से बोले, हम तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहे हैं। जमाना बुरा है। बाल-बच्चे वाले आदमी को ऐसी। बातों में नहीं पड़ना चाहिए।

अपने कान की प्रतिक्रिया जानने के लिए साहब ने उसकी ओर देखा। उनके हाथ मेज पर बिछे कपड़े की सलवटों को सहलाने में व्यस्त थे। साहब की ओर देखकर इस प्रश्न का उत्तर अनकी आँखों में ही झाँक पाने का उसका मन हुआ। परंतु काले चश्मे के अपारदर्शी शीशों के पीछे छिपी आँखों के स्थान पर केवल अंधकार घिरा हुआ था।

'ऐसा कोई खतरनाक काम तो मैने नहीं किया साहब, उसने पेपरवेट के फूलों पर अपनी नजर जमाकर उत्तर दिया।

'हम जानते हैं, सब कुछ जानते हैं। कल रात तुम्हारे घर मीटिंग हुई थी या नहीं? मानसिक उत्तेजना के कारण साहब दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में उलझाते हुए बोले।

'दो-चार यार दोस्त बैठने के लिये आ जाये तो उसे मीटिंग कौन कहेगा साहब? उसने बात का महत्व कम करने की कोशिश में मुस्कराने का अभिनय किया।

सुनो जवान! यार दोस्तों की महफिल में गप्पें होती है, ताश खेले जाते है, शराब पी जाती है, लेकिन स्कीमें नहीं बनतीं।' इस बार स्वर कुछ अधिक सधा हुआ था।

'साहब, लोगों को मकान की परेशानी है, छुट्टियों का ठीक हिसाब नहीं, छोटी-छोटी बातों पर जुर्माना हो जाता है। यहीं बातें आपसे अर्ज करनी थी। यही वहाँ भी सोच रहे थे। स्वर में दीनता थी परन्तु साहब के चेहरे पर टिकी हुई उसकी तीखी दृष्टि अनजान में ही जैसे इस अभिनय को झुठला रही थी।

'मैं कौन होता हैं, जो तुम लोग मुझसे यह कहने के लिए आते हो? मै भी तो भाई. तुम्ही लोगों की तरह एक छोटा-मोटा नौकर हूँ, अपनी दोनों हथेलियों को मेज पर फैलाकर साहब ने कृत्रिम मुस्कान का ऋण लौटा दिया और अपनी कुर्सी पर अधिक आश्वस्त होकर बैठ गए। उनके सामने बैठे हुए व्यक्ति को यह समझौता स्वीकार न हुआ।

कृत्रिमता के आवरण को पूरी तरह उतार कर दृढ़ स्वर में वह बोला,' तो जो हमारी बात सुनेगा। उसी से कहेंगे साहब!' एकाएक साहब बौखला कर कुर्सी पर उछल पड़े,' तुम बाहर की पार्टियों के एजेन्ट हो, ऐसे लोग ही हड़ताल करवाते हैं। मै एक-एक को सीधा करवा दूंगा। मैं जानता हूँ तुम्हारे ग्रुट में कौन-कौन है। आइन्दा ऐसी-ऐसी बातें मैं नहीं सुनना चाहता।

वह चीफ के कमरे से निकल कर अपने काम पर लौटा तो मिस्त्री पास बैठाकर समझाने लगा,'इस दुनिया में सबसे मेल-जोल रखकर चलना पड़ता है। नदी किनारे की घास पानी के साथ थोड़ा झुक लेती है और फिर उठ खड़ी होती है। लेकिन बड़े-बड़े पेड़ धार के सामने अड़ते है और टूट जाते हैं। साहब ने तुम्हारी बदली कास्टिक टैंक पर कर दी है, बड़ा सख्त काम हैं, अब भी साहब को खुश कर सको तो बदली रुक सकती है। उत्तर में उसने कुछ नहीं कहा। उठकर कास्टिक टैंक पर चला गया। टैंक पर काम करने वाले मजदूरों ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया। उसे ऐसा लगा कि जैसे वे लोग जान-बूझकर उससे पृथक रहने का प्रयत्न कर रहे हों। पुराने पेंट' और जंग लगे हुए सामान को कास्टिक में धोया जा रहा। था। आगे बढ़कर उसने भी उन्हीं की तरह काम शुरु कर दिया।

शाम तक काम का यही क्रम चलता रहा। घर लौटकर उसने अनुभव किया-हाथ-पैरों में विचित्र प्रकार की जलन हो रही थी।

घर पहुँचते- पहुँचते अँधेरा घिर गया था। हाथ-मुँह धोकर उसने जल्दी-जल्दी खाना खाया और फिर बच्चे को लेकर आँगन में झिलंगी चारपाई पर आ बैठा। साँझ अत्यधिक उदास हो आई थी। बच्चे ने कुछ देर तक उससे खेलने का प्रयत्न किया, लेकिन पिता की ओर से विशेष प्रोत्साहन न पाने पर वह कब माँ के पास चला गया, इसका उसे ध्यान न रहा। जिनकी उसे प्रतीक्षा थी उनमें से कोई भी न आया था, केवल हरीराम ने आकर अब तक दो-तीन बीड़ियाँ फेंक ली थीं।। हरीराम की ओर से ही दो-तीन बार बातचीत शुरू करने का प्रयत्न किया जा चुका था, लेकिन उसके अटूट मौन के कारण हर बार वह प्रयत्न विफल सिद्ध हुआ था। इस बार फिर हरीराम ने ही बात छेड़ी। ' घनश्याम की तो बीवी बीमार हो गई, लेकिन मोहन, राधे, हनीफ, वगैरह किसी को तो आना चाहिए था। 'शायद उनके बच्चे बीमार हो गये हों, झुझंलाकर उसने उत्तर दे दिया।

हरीराम ने फिर बात दुहराई इस बार स्वर में चाटुता की भरमार थी – 'हम तो तुम्हारे पीछे हैं भाई। जैसा तुम कहोगे वैसा करेंगे। मैं तो ठीक टैम पर आ गया था, देख लो।'

'तुम ही ठीक टैम पर न आओगे तो चीफ साहब को रिपोट कौन देगा।

हरीराम की ओर उपेक्षापूर्ण दृष्टि डालकर घृणा से उसने कहा और अपनी साइकिल उठाकर बाहर चल दिया।

उसके विरुद्ध कब कौन -सा षड्यंत्र रचा दिया जाये, इसका उसे संदेह हने लगा था। छुट्टी होने पर उसने शीघ्रता से थैला कंधे पर डाला। दुपहर में उसने सब रोटियाँ खा ली थ पर आज थैला अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ भारी था। विस्मय से उसने रोटी के डिब्बे को खोलकर देखा... एक कागज में कुछ पुर्जे लिपटे रखे थे। उसने अनुभव किया कि उसके हृदय की धड़कन तेज हो गई है। आवेश में उसकी मुट्ठी भिंच गयी, परंतु फिर संयत होकर उसने वह सामान पास ही अलमारी में डाल दिया।

बाहर पंक्ति के पहले सिरे पर फोरमैन चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को अपने डिब्बे थैले खोलकर दिखाने का आदेश दे रहा था। उसकी बारी आ गई थी। फोरमैन ने स्वयं डिब्बा-थैला हाथों में लेकर देखा, असंतोष के कारण उसका मुँह फीका पड़ गया। सर्चर को सबकी जेबें टटोलने का उसने आदेश दिया, उसकी जेबें भी स्वयं फोरमैन ने टटोली, परंतु फोरमैन के चेहरे पर फिर निराशा छा गई। जाते-जाते उसने फोरमैन की ओर देखा। फोरमैन ने ऑखे भूमि की ओर झुका ली थी। गर्व से छाती उठाकर वह गेट की ओर चल दिया।

प्रातः काल अंतिम साइरन हो जाने पर गेट बंद हो जाना चाहिए. परंतु आधा घंटा उसके खोले जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, परंतु व्यावहारिक रूप में ऐसा नहीं होता। साइरन सुनकर दूर से पैदल आने वाले दौड़ लगाना शुरू कर देते हैं। साइकिलों के पैडिल दुगनी गति से चलने लगते हैं। लोग हाँफते-हाँफते दो तीन मिनट में अंदर पहुँच पाते हैं। पकी उम्र के बड़े-बूढ़े अंदर आकर घड़ी भर दम लेने के बाद ही हाजिरी पर जा पाते है। परंतु उस दिन वर्क्स मैनेजर ने साइन के बाद ही गेट बंद करवा दिया। वह गेट से बीस-तीस गज की दूरी पर ही था परंतु वहाँ पहुँचने से पहले ही चौकीदार ने जाली खोल दी ।

अभी बीस-पच्चीस आदमी और भी थे जो हाँफते हुए चले आ रहे थे निकट आकर सभी उदास हो गए। आधा घंटा देर में आने का दंड छः आठ आना से कम नहीं होता।

पिछली बार वेतन के दिन घर जाने पर पत्नी ने उससे पूछा था, 'कितने हैं?

'चौवन आठ आने'

'अच्छा ! मैने पूरे पचपन का हिसाब लगाया था। बबुआ की टोपी इस महीने भी रह गयी।'

हाँफते हुए लोगों में से कितनों के बबुओं की टोपी इस बार भी रह जायेगी, उसने सोचा।। परंतु तभी उसने जो कुछ सुना उसे सुनकर उसे ऐसा लगा जैसे सारा दोष अकेले उसी का हो। वही झुकी कमर वाले बुजुर्ग हांफते हुए कह रहे थे, 'घोड़े के पीछे और अफसर के आगे कौन समझदार जायेगा? एक आदमी के कारण इतने लोगों का नुकसान हो गया, ऐसे लड़ने-भिड़ने को ही जवानी बना रखी हो तो आदमी दंगल करे, अखाड़े में जाये। नौकरी में तो नौकर की ही तरह रहना चाहिए।

उसका मन हुआ कि बुजुर्ग के पास जाकर कुछ बात करे। पर न जाने क्यों वह ऐसा न कर सका।

दिन-भर वह यंत्रवत् काम करता रहा। थकान के कारण शरीर चूर-चूर हो रहा था। परंतु बैठकर सुस्ता लेने को भी उसका मन नहीं हुआ। कैंटीन में जाकर उसने चाय ली और अनुभव किया कि चाय फीकी है। पहले किसी दिन ऐसी बात होती तो वह कैंटीन मैनेजर से शिकायत करता परंतु आज आधी चाय छोड़कर चला आया।

ग्रीज और तेल लगा हुआ सामान उठाने के कारण हाथ गंदगी से भर गये थे; साइरन की आवाज उसके कानों में पड़ी तो उसने काम बंद किया। ऐसा लगता था कि साइरन यदि किसी कारण से न बजता तो वह उसी प्रकार यंत्रवत काम करता रहता। जल्दी-जल्दी में उसने दोनों हाथ कैरोसीन तेल में धो डाले। साबुन का डिब्बा टटोलकर देखा तो वह खाली था। भूमि पर से थोड़ी मिट्टी उठाकर वह नल की ओर चल दिया। पिछले तीन-चार महीनों की नौकरी में आज वह पहली बार मिट्टी से हाथ धो रहा था। भुरभुरी मिट्टी को पानी के साथ लगाकर हाथों में मला ओर फिर दोनों हाथ नल के नीचे लगा दिए। पानी के साथ मिट्टी की पतली पर्त भी बह चली। दूसरी मिट्टी लगाने से पहले उसने हाथों को सँघा और अनुभव किया कि हाथों की गंध मिट चुकी है। सहसा एक विचित्र आतंक से उसका समूचा शरीर सिहर उठा। उसे लगा जैसे आज वह भी घासी की तरह इस बदबू का आदी हो गया है। उसने चाहा कि वह एक बार फिर हाथों को सँघ ले लेकिन उसका साहस न हुआ। परंतु फिर बड़ी मुश्किल से वह दोनों हाथों को नाक तक ले गया और इस बार उसके हर्ष की सीमा न रही। पहली बार उसे भ्रम हुआ था। हाथों में कैरोसीन तेल की बदबू अब भी आ रही थी।

●

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

यूपीएस : एनडीए सरकार द्वारा कर्मचारियों के आन्दोलन को तोड़ने की साज़िशाना और धोखेबाज़ कोशिश

● विवेक

24 अगस्त को बहुत शोर-शराबे के साथ केन्द्र सरकार ने यूपीएस यानी यूनीफ़ाइड पेंशन स्कीम को मंज़ूरी दी। केन्द्र सरकार की घोषणा के अनुसार यह स्कीम 1 अप्रैल, 2025 को लागू हो जायेगी। हालाँकि, यह स्कीम स्वैच्छिक होगी, अर्थात जो कर्मचारी अभी एनपीएस के माताहत है, वे चाहे तो यूपीएस का लाभ ले सकते है, यह उनकी इच्छा पर है। ख़ैर, इस स्कीम के मंज़ूर होते ही भाजपा और गठबन्धन में शामिल पार्टियों के प्रवक्ताओं से लेकर गोदी टीवी चैनलों के एंकर तक यूपीएस के फ़ायदे गिनाने में लग गये। वैसे मज़े की बात यह है कि यही लोग कुछ समय पहले तक एनपीएस के फ़ायदे गिनाते थे!

वैसे आख़िर क्या ज़रूरत आन पड़ी कि भाजपा के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार को पेंशन स्कीम में बदलाव के लिए मजबूर होना पड़ा? इस वर्ष हुए लोकसभा चुनाव में भाजपा और उसके सहयोगी दलों को काफ़ी मशक़्क़त करनी पड़ी थी। इनकी जन-विरोधी नीतियों के कारण जनता के एक हिस्से ने तो इन्हें सिरे से ख़ारिज कर दिया था। साम्प्रदायिकता और 'हिन्दू राष्ट्रवाद' के नारे भी जनता के एक हिस्से (जिसमें नौकरी पेशा वर्ग शामिल है) को रिझा पाने में असमर्थ साबित हो रहे थे। बहुत मुमकिन है कि जो सत्ता-विरोधी लहर (पढ़ें मोदी-विरोधी लहर) अभी देश में बनी हुई है, बहुत सम्भव है कि उसका प्रभाव आने वाले विधानसभा चुनावों में भी दिखे। इसके साथ ही देश भर में चल रहे ओपीएस आन्दोलन के प्रभाव में छत्तीसगढ़, राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में ग़ैर भाजपा सरकारों द्वारा ओपीएस फिर से बहाल कर दी गयी थी, जिसका फ़ायदा एक हद तक इण्डिया गठबन्धन को इन लोकसभा चुनावों में पहुँचा था। इसलिए आने वाले विधानसभा चुनावों में अपनी राजनीतिक ज़मीन को खिसकता हुआ देख एनडीए सरकार को पेंशन नीति की पूरी ओवरहॉलिंग करनी पड़ी। वैसे ऐसा नहीं है कि एनपीएस जबसे अस्तित्व में आयी है, तब से उसके प्रावधान स्थिर बने हुए है। समय-समय पर उसमें भी बदलाव हुए हैं। इसी साल के फ़रवरी माह में भी एनपीएस को लेकर समीक्षा बैठक भी की गयी थी। एनपीएस में सरकार द्वारा समय-समय पर किये गये परिवर्तनों के कारण एनपीएस को लेकर कर्मचारियों के बीच ऊहापोह कि स्थिति निरन्तर बनी रही। लेकिन केन्द्र सरकार द्वारा लायी गयी यूपीएस स्कीम से कर्मचारी नाखुश हैं। एनपीएस और यूपीएस में कोई बहुत विशेष अन्तर नहीं है। दोनों ही कर्मचारियों के वेतन में से अंशदान पर आधारित पेंशन योजना है, जबकि कर्मचारियों के आन्दोलन की मुख्य माँग ही यही थी कि पेंशन के लिए वेतन में से कटौती नहीं की जाये।

एक देश : तीन पेंशन स्कीम!

एक बार, देश में चल रही 'नाना प्रकार' की पेंशन स्कीमों की बारीकियों को समझना लेना ज़रूरी है। ओल्ड पेंशन स्कीम के तहत कर्मचारियों के वेतन से किसी भी तरह का अंशदान नहीं लिया जाता था, और पेंशन के रूप में कर्मचारी को अन्तिम आहरित वेतन और महँगाई भत्ता का 50% या सेवा के पिछले 10 महीनों में औसत कमाई, जो भी अधिक हो, वह राशि दी जाती थी। यह पेंशन स्कीम देश में मौजूद मज़बूत कर्मचारी-मज़दूर आन्दोलन का नतीजा थी।

वर्ष 1991 में निजीकरण व उदारीकरण की नीतियों का नतीजा था कि जो थोड़ी-बहुत जन कल्याणकारी नीतियाँ देश में मौजूद थीं, उनमें धीरे-धीरे कटौती की जाने लगी। उदारीकरण की नीतियों के लागू होने के करीब डेढ़ दशक के बाद वर्ष 2004 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने ओल्ड पेंशन स्कीम के बदले न्यू पेंशन स्कीम को मंज़ूरी दी। वर्ष 2004 के बाद सरकारी सेवा में आने के उपरान्त कर्मचारियों को इसी एनपीएस के तहत पेंशन देने की बात कही गयी। जहाँ ओपीएस में कर्मचारी को किसी तरह का अंशदान नहीं देना था, वही एनपीएस में कर्मचारी को अपने मूल वेतन का 10 फ़ीसदी इस स्कीम में देना पड़ता है, और सरकार द्वारा मूल वेतन का 14 फ़ीसदी योगदान दिया जाता है और इसकी सबसे ख़ास बात है कि यह बाज़ार से जुड़ी हुई स्कीम है! इस बिन्दु पर हम आगे आयेंगे। एनपीएस में किसी कर्मचारी को सेवा निवृत्ति के बाद कितना पेंशन मिलेगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं है।

अब सवाल यह है कि आख़िर एनपीएस के तहत पेंशन की गारण्टी क्यों नहीं है? एनपीएस के तहत कर्मचारियों से लिया गए अंशदान का बाज़ार में निवेश किये जाने का प्रावधान है। एनपीएस के तहत, कर्मचारियों को 11 सरकारी और निजी संस्थागत निवेशकों (एसबीआई, एलआईसी, यूटीआई, एचडीएफसी आदि) में से कुछ को अपनी अंशदान की गयी राशि के निवेश के लिए चुनना पड़ता है, जो पेंशन फ़ण्ड रेगुलेटरी एण्ड डेवलपमेण्ट ऑथोरिटी द्वारा नियन्त्रित होते है। ये संस्थागत निवेशक शेयर बाज़ार कॉर्पोरेट कम्पनियों में निवेश करते है या यूँ कहे सट्टा लगाते हैं। इस निवेश के ज़रिये कॉर्पोरेट के बड़े खिलाड़ी अपना मुनाफ़ा कमा सकते हैं, और इसके एवज़ में इसका एक हिस्सा संस्थागत निवेशकों (इस केस में निवेश करने वाले उपक्रमों) को लौटा सकते हैं, जो कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति के उपरान्त पेंशन या एकमुश्त राशि के तौर पर मिलेगा। अगर इस क्रम में बाज़ार में मन्दी का दौर लम्बे समय तक चले तो बेशक इसका असर कर्मचारियों को दिये जाने वाले पेंशन पर पड़ेगा। यह बिल्कुल ही सम्भव है कि सेवानिवृत्ति के बाद कर्मचारी को गुज़ारे लायक पेंशन ही न मिले। कुल मिलाकर, एनपीएस स्कीम कर्मचारियों के लिए एक छलावा भर है एवं पूँजीपतियों को बड़ी मात्रा में वित्तीय पूँजी उपलब्ध कराने की 'निन्जा टेकनीक' है।

करीब 2 दशकों से देश भर के कर्मचारी पुरानी पेंशन स्कीम लागू करने की माँग उठा रहे थे। हालाँकि , पिछले 5 सालों में उनकी यह लड़ाई एक बार आन्दोलन का रूप ले चुकी है। इसका मुख्य कारण देश के मौजूदा हालात हैं। महँगाई प्रतिदिन बढ़ रही है। इसके कारण एक औसत निम्न-मध्यमवर्गीय व मध्यमवर्गीय परिवार के लिए अपना ख़र्च चलाना मुश्किल हो रहा है। इसके साथ ही सरकारी और निजी क्षेत्र में घटते नौकरियों के अवसर के कारण बढ़ती बेरोज़गारी ने इस स्थिति को और विकराल बना दिया है। ज़्यादातर निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों में जिनमें कोई व्यक्ति सरकारी सेवा में था, उस व्यक्ति विशेष की सेवानिवृत्ति के उपरान्त परिवार के भरण पोषण के लिए स्थिर मासिक आय की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गयी है, साथ ही इसकी कोई गारण्टी नहीं है कि परिवार में दूसरे व्यक्ति को पक्का रोज़गार मिल ही जायेगा। जिन व्यक्तियों ने एनपीएस का चुनाव किया है, उन्हें सेवानिवृत्ति के उपरान्त सन्तोषजनक पेंशन नहीं मिली है। ऐसे में परिवार का भरण-पोषण करना दूभर हो जायेगा। इसलिए ऐसे कर्मचारी बड़ी तादाद में इस आन्दोलन में शामिल हुए।

ओपीएस लागू करने की लड़ाई में मुख्यत: तीसरे और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारी ही शामिल थे, और यह ज़ाहिर भी था। ऊँचे दर्ज़े के कर्मचारी पहले ही कई तरह की निवेश स्कीमों व शेयर बाज़ार की सट्टेबाजी से इतना अर्जित कर चुके होते है कि पेंशन उनके लिए बहुत मायने नहीं रखती है। इसलिए यह लड़ाई मुख्यत: इन्हीं तीसरे और चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों की ही रही, यानी मूलत: मज़दूर वर्ग की रही। इन आन्दोलनों का ही असर था कि सरकार को मार्च, 2023 में वित्त सचिव टी वी सोमनाथन की अध्यक्षता में एक कमिटी बनानी पड़ी। इसी कमिटी की रिपोर्ट के आधार पर यूपीएस लागू की गयी। हालाँकि ओपीएस आन्दोलन से जुड़े संगठनों का कहना है कि सोमनाथन कमिटी ने पेंशन स्कीम में बदलाव के सम्बन्ध में कोई राय-मशविरा नहीं किया और एकतरफ़ा तरीके से यूपीएस लागू कर दी।

यूपीएस में फिक्सड पेंशन पाने के लिए किसी कर्मचारी के लिए न्यूनतम 10 साल की सेवा देना आवश्यक है, हालाँकि इस स्थिति में भी उसे केवल 10000 रु की ही पेंशन मिलेगी। वहीं अगर वह 25 साल की सेवा देगा तब वह अपने आख़िरी के 12 महीनों के वेतन के औसत का 50 फ़ीसदी पेंशन के तौर पर पाने का पात्र होगा। इस तरह तो अर्द्धसैनिक बल या अन्य सुरक्षा बलों के कर्मचारी सम्मानजनक पेंशन से महरुम हो जायेंगे, चूँकि उनकी सेवा कई मामलों में 10 से 15 सालों की भी नही हो पाती है, 25 साल की नौकरी तो दूर की बात है। इसके साथ ही ऐसे कई कर्मचारी होते है, जो आरक्षित वर्ग से आते है, और जिनकी नौकरी शुरू होते-होते उनकी आयु 42 वर्ष हो होती है। ऐसे कर्मचारियों को भी यूपीएस के तहत पूरी पेंशन नहीं मिल पायेगी, क्योंकि इनकी नौकरी के 25 साल पूरे नहीं हो पायेंगे।

वैसे अभी भी यूपीएस के मसले पर और स्पष्टता आनी बाकी है, लेकिन अगर 25 अगस्त को दहिंदूबिजनेसलाइन.कॉम में प्रकाशित रिपोर्ट को आधार माना जाये तो यूपीएस योजना में पेंशन कॉर्पस को दो हिस्से में बाँटा जायेगा। पहले हिस्से में कर्मचारी का योगदान और उसके समान सरकारी योगदान जमा किया जायेगा और इस राशि को चुनिन्दा फण्डों में निवेश किया जायेगा। दूसरे हिस्से में सरकार द्वारा किये गए अतिरिक्त योगदान (मूल वेतन और डीए का 8.5 प्रतिशत) का अलग से निवेश किया जायेगा। यानी यह योजना भी बाज़ार से ही जुड़ी हुई होगी, फ़र्क सिर्फ़ इतना होगा कि इस बार एक न्यूनतम स्थिर पेंशन देने का वादा करेगी, हालाँकि इस पेंशन को पाने में भी कई पेच हैं, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

क्या सरकार वाकई कर्मचारियों को सम्मानजनक व स्थिर पेंशन दे पाने में अक्षम है?

वैसे जब भी आन्दोलनकारी भाजपा सरकार से ओपीएस की माँग करते थे, तब सरकार सरकारी ख़ज़ाने पर अत्याधिक बोझ की बात करती थी। केन्द्र सरकार के अनुसार पुरानी पेंशन स्कीम से सरकार के ख़ज़ाने पर दबाव पड़ता है। अन्य क्षेत्रों में विकास कार्य करने में मुश्किलें आती है। एकबारगी यह तर्क सतही तौर पर किसी को सही लग सकता है, लेकिन अगर सिर्फ़ पाँच सालों के दौरान पेश हुए केन्द्रीय बजट को देखा जाये, तो सत्य सामने आ जाता है कि सरकार जनता की गाढ़ी कमाई को कहाँ ख़र्च कर रही है?

वित्तीय वर्ष 2024 में पेंशन पर ख़र्च बजट का सिर्फ़ 5.3 फ़ीसदी रह गया है। अगले वित्तीय वर्ष 2025 के दौरान पेंशन पर सरकारी ख़र्च बजट का केवल 5 फ़ीसदी रह जायेगा। जबकि वर्ष 2019 में पेंशन पर ख़र्च बजट का 6.9 फ़ीसदी था।जब सरकार के पास पेंशन पर ख़र्च करने को पैसे नहीं है तो फ़िर बजट में ख़र्च कहाँ हो रहा है?

बजट में चन्द पूँजीपतियों के फ़ायदे के लिए करों में छूट के लिए हर तरह के प्रावधान किए गए , वही दूसरी तरफ आम जनता पर करों का बोझ डाला गया ;

"....2022-23 और 2024-25 के बीच कर से प्राप्त होने वाली कुल आय यानी सरकार का कर राजस्व 30,54,192 करोड़ रुपये से बढ़कर 38,30,796 करोड़ रुपये पहुँच गया। कैसे? मुख्य रूप से आम मेहनतकश जनता पर अप्रत्यक्ष करों और मध्यवर्ग पर आयकर का बोझ बढ़ाकर। दूसरी ओर, पूँजीपतियों द्वारा दिये जाने वाले कारपोरेट कर को लगातार घटाया गया। इस बीच कारपोरेट कर कुल कर राजस्व के 29 प्रतिशत से घटकर 27 प्रतिशत रह गया। दूसरी ओर, आयकर का हिस्सा 26.8 प्रतिशत से बढ़कर 30.2 प्रतिशत और महज़ जीएसटी 27 प्रतिशत से बढ़कर 27.2 प्रतिशत हो गया। ज्ञात हो कि पेट्रोलियम उत्पादों पर लगने वाला कर जीएसटी में शामिल नहीं है। 2022-23 में पेट्रोलियम उत्पादों से केन्द्र सरकार ने 4.28 लाख करोड़ रुपये जनता से वसूले जबकि राज्य सरकारों ने कुल 3.2 लाख करोड़ रुपये वसूले। अगर इन्हें भी जनता पर डाले गये कर बोझ में जोड़ा जाय, तो यह आँकड़ा कहीं ज़्यादा हो जाता है। वहीं दूसरी ओर, देशी और विदेशी पूँजी को लाभ पहुँचाने के लिए कुल कर राजस्व में कस्टम शुल्क से आने वाले हिस्से को भी पिछले दो वर्षों में 7 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत कर दिया गया है।..... " (अगस्त 2024, सम्पादकीय, मज़दूर बिगुल)

जैसा कि स्पष्ट है सरकार के पास राजस्व में कोई कमी नहीं आयी है, उल्टे सरकार के राजस्व में 14.5 फ़ीसदी की वृद्धि हुई है, लेकिन सरकार के ख़र्चे मे केवल 5.94 फ़ीसदी की ही वृद्धि हुई है। इस सरकारी ख़र्चे का

(पेज 6 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016